जिनमंदिर मूर्ति निर्माण परम्परा

संकलनकर्त्री
गणिनीप्रमुख
आर्यिका ज्ञानमती

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं.487
ISBN-978-93-84003-98-2

जिनमंदिर मूर्ति निर्माण परंपरा

(श्री गौतमस्वामी विरचित चतुर्थकालीन वाणी चैत्यभक्ति एवं आदिपुराण आदि ग्रंथों से)

–संकलनकर्त्री –

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

ऋषभगिरि मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर विराजमान 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव मूर्ति निर्माण की प्रेरणास्रोत दिव्यशक्ति चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के सानिध्य में आयोजित पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिकाश्री चन्दनामती माताजी के 59वें जन्मदिवस ज्येष्ठ वदी अमावस (5 जून 2016) के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com, rk195057@yahoo.com
Website : www.jambudweep.org , www.encyclopediaofjainism.com
Facebook : divyashaktigyanmatimataji

COURTESY–JAIN BOOK DEPOT
C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain
C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1
Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2542	मूल्य
1100 प्रतियाँ	ज्येष्ठ वदी अमावस-5 जून 2016	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादकः–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस बीसवीं सदी में नारियों में सर्वप्रथम ग्रंथ लेखन का कार्य करके 400 ग्रंथों का लेखन करके साहित्य भंडार को समृद्ध करने में एक कीर्तिमान स्थापित किया है। अपने 63 वर्ष के दीक्षित जीवन में निरन्तर श्रुत की आराधना करने वाली पूज्य माताजी की लेखनी अभी भी रुकी नहीं है तथा 82 वर्ष की अवस्था में भी लेखन कार्य करके नित्य नयी कृतियाँ उनकी लेखनी से प्रसूत हो रही हैं, जिनमें विभिन्न स्तोत्र पाठ, स्वाध्याय के ग्रंथ एवं पूजा विधान आदि हैं। भक्ति मार्ग को प्रशस्त करने वाली पूजाओं में भी पूज्य माताजी उस अनुयोग संबंधी संपूर्ण विषयवस्तु को गागर में सागर की तरह समाहित करने में अत्यन्त निष्णात हैं। माताजी द्वारा रचित अनेक छोटे-बड़े विधानों को करके लोग भक्ति सरिता में अवगाहन करके आनंद की अनुभूति करते हैं।

श्रावकों के षट्कर्तव्य आचार्यों ने बताए हैं—

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां, षट्कर्माणि दिने दिने।।

अर्थात् देवपूजा, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप एवं दान गृहस्थों को प्रतिदिन करते रहना चाहिए जिससे उनका गृहस्थ धर्म सार्थक माना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से प्रकाशित करके नित्य नई कृतियाँ पाठकों तक पहुँचाने का सौभाग्य दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के पदाधिकारियों को प्राप्त होता है जो हमार लिये गौरव की बात है।

उसी क्रम में यह **'जिनमन्दिर मूर्ति निर्माण परम्परा'** पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है। इस पुस्तक में पूज्य माताजी ने जिनमन्दिर-मूर्ति निर्माण की महिमा और उसके फल को बताते हुए सभी भव्य जीवों को पुण्य एकत्र करने का सुनहरा अवसर प्रदान किया है। इस पुस्तक का स्वाध्याय करके सभी मनुष्य अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हुए मानव जीवन को सार्थक करें, यही मंगल भावना है।

पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और आगे भी इसी तरह अपने ज्ञान से भक्तों को सिंचित करती रहें, यही जिनेन्द्र देव से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

त्रैकालिककृतान् वन्दे, जिनचैत्यजिनालयान्।
अनन्तानन्तप्रोक्तांस्ता- ननन्तगुणलब्धये।।

जिनमन्दिर-मूर्ति निर्माण की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है और अनन्तकाल तक चलती रहेगी। इस बात को बताने के लिए जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी दिव्यशक्ति चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अनेक प्राचीन ग्रंथों का स्वाध्याय, मनन, चिन्तन करके **'जिनमन्दिर मूर्ति निर्माण परम्परा'** पुस्तक में अनेकों प्रमाण दिए हैं।

सर्वप्रथम पूज्य माताजी ने चतुर्थकालीन श्री गौतमस्वामी के मुख से निकली चैत्यभक्ति का प्रमाण दिया है जिसमें श्री गौतमस्वामी ने स्वयं कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वन्दना करते हुए लिखा है—

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।

अर्थात् तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थित मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिम्बों को प्रणमन करता हूँ।

इसके बाद में आदिपुराण ग्रंथ से प्रमाण दिए हैं कि युग की आदि में इन्द्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमन्दिर बनाये। उत्तरपुराण ग्रंथ से कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाए गए रत्नों के चौबीस मन्दिरों का वर्णन है। पद्मपुराण ग्रंथ में भी लिखा है कि कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने नाना प्रकार के सर्वरत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर बनवाये हैं। पुनः आदिपुराण ग्रंथ से लिखा है कि सुलोचना ने अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ बनवाईं। हरिषेण चक्रवर्ती ने भी अगणित जिनमंदिर बनवाए। श्री रामचन्द्रजी ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाए एवं जिनेन्द्र भगवान की हजारों प्रतिमाएँ बनवाई थीं, ऐसा पद्मपुराण में लिखा है—

रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः।
पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः।।32।।

पद्मपुराण पर्व-40।

अर्थात् उन मन्दिरों में सब लोगों के द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं।

आराधना कथाकोष में करकण्डु राजा की कथा में धाराशिव नगर में 1008 खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है। द्वारावती में कुबेर द्वारा एक हजार शिखरों वाले जिनमंदिर निर्माण का वर्णन है। राजा दशरथ ने भरत आदि राजाओं द्वारा बनवाये जिनमंदिर का जीर्णोद्धार कराया, ऐसा पद्मपुराण ग्रंथ में लिखा है। आदिपुराण ग्रंथ में लिखा है कि भरतचक्रवर्ती ने बहुमूल्य रत्नों से बने हुए, सुवर्ण की रस्सियों से बंधे हुए और जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं से सजे हुए बहुत से घण्टे बनवाये और इन्हें राजभवन के महाद्वार एवं गोपुरद्वारों पर टंगवायें—

निर्मापितास्ततो घण्टा जिनबिम्बैरलंकृताः।
पराघ्र्यरत्ननिर्माणाः संबद्धा हेमरज्जुभिः।।87।।

(आदिपुराण भाग-2।

श्री रामचन्द्र के समय अयोध्या में श्री अरनाथ भगवान के मंदिर का वर्णन है। अयोध्या में श्री मुनिसुव्रतनाथ का भी मंदिर था जहाँ पर वर्षाकाल में सप्तर्षि आए और भगवान का दर्शन किया। जब मथुरा में महामारी फैल गई थी तब सप्तर्षि के आने से वह शान्त हुई, अतः सप्तर्षि मुनियों ने राजा शत्रुघ्न को उपदेश दिया कि इस नगरी की चारों दिशाओं में सप्तर्षि की प्रतिमा स्थापित करो और घर-घर में चैत्यालय बनवाओ, जिससे महामारी नहीं आएगी। उत्तरपुराण ग्रंथ में लिखा है कि धरणेन्द्र देव ने संजयंत मुनि की प्रतिमा बनवाई।

जिनेन्द्रदेव के दर्शन के फल का वर्णन करते हुए इसमें पद्मपुराण ग्रंथ से लिखा है—जो भगवान के दर्शन करता है उसे अनन्त उपवास का फल मिलता है। जिनमंदिर एवं प्रतिमा निर्माण का फल पद्मपुराण एवं वसुनन्दि श्रावकाचार ग्रंथ से बहुत ही सुन्दर दिया है। धवला पु. 6 से जिनेन्द्रदेव के दर्शन के फल का वर्णन करते हुए लिखा है—

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा।।

अर्थात् जिनेन्द्रों के दर्शन से पाप संघातरूपी कुंजर के सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार कि वज्र के आघात से पर्वत के सौ टुकड़े हो जाते हैं।

इस पुस्तक में प्रतिष्ठा ग्रंथों के आधार से यक्ष-यक्षी सहित जिनप्रतिमा का

वर्णन है। तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथों से शासन देव-देवी के प्रमाण हैं। 16 अभिषेक पाठ संग्रह एवं प्रतिष्ठातिलक आदि से पूजा के प्रकरण में प्रमाण दिए हैं, चौबीस यक्ष-यक्षी की पूजा के प्रमाण, दिग्पाल पूजा, क्षेत्रपाल पूजा आदि के प्रमाण हैं। इसके साथ ही इसमें पूज्य माताजी ने पंचामृत अभिषेक के प्रमाण, चन्दन लेपन के प्रमाण, पुष्प चढ़ाने के प्रमाण, सचित्त पूजा निर्दोष है इसके प्रमाण, स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण, जनेऊ धारण के प्रमाण आदि कई ग्रंथों से दिए हैं।

कृत्रिम जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओं का वर्णन करते हुए पूज्य माताजी ने हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप के जिनमन्दिरों का वर्णन करते हुए जम्बूद्वीप में विराजमान **222 जिनप्रतिमाओं** को नमन किया है। इसके साथ ही हस्तिनापुर में निर्मित स्वर्णिम तेरहद्वीप के जिनमन्दिरों का वर्णन करते हुए तेरहद्वीप में विराजमान **2127 जिनप्रतिमाओं को** नमन किया है। पुनः हस्तिनापुर में निर्मित शास्त्रोक्त तीनलोक रचना के जिनमन्दिरों का वर्णन करते हुए उसमें विराजमान **448 जिनप्रतिमाओं** को नमन किया है। इसके बाद अति संक्षिप्त तीनलोक का ध्यान प्रतिदिन करने की प्रेरणा प्रदान की है, जिससे हमारा शरीर-मन और वचन पवित्र होगा और हम एक दिन अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने में सफल होंगे।

अन्त में प्रशस्ति है। प्रशस्ति में पूज्य माताजी ने लिखा है कि ऋषभगिरि मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में मैंने वीर नि. सं. 2542 को पौष वदी द्वितीया को इस ग्रंथ का संकलन करके पूर्ण किया है। इस ग्रंथ का स्वाध्याय सभी के जीवन में मंगलकारी हो, ऐसी मंगल भावना है।

इस ग्रंथ को पढ़कर सभी भव्यजीव अपने जीवन में अवश्य ही जिनमंदिर एवं जिनमूर्ति का निर्माण कराकर महान सातिशय पुण्य का बंध करके परम्परा से अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने में सफल हों, ऐसी मंगल कामना है। सरस्वती की प्रतिकृति पूज्य माताजी के दीर्घायु की कामना करते हुए यही भगवान से प्रार्थना है कि पूज्य माताजी की छत्रछाया एवं वरदहस्त हम सभी पर सदैव बना रहे। इन्हीं शब्दों के साथ पूज्य माताजी के चरणों में कोटि-2 वंदन।

दो शब्द

—आर्यिका सुव्रतमती

स्वदोषशान्त्या वहितात्मशांतिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद् भवक्लेश भयोपशान्त्यै शांतिर्जिनो मे भगवान्शरण्यः।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि, वर्तमान में पीछीधारी सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, दिव्यशक्ति परमपूज्य 105 गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना की है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि किस तरह से मैं वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से, पूर्वाचार्यों की वाणी से सिंचित करूँ।

प्रस्तुत पुस्तक **'जिनमन्दिर मूर्ति निर्माण परम्परा'** में पूज्य माताजी ने पूर्वाचार्यों की वाणी को संकलित किया है, जिनका सीधा सम्बन्ध भगवान महावीर की वाणी से है। मूलाचार में श्री कुंदकुंददेव ने बहुत सुन्दर बात लिखी है–

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणबाहिवेयण-खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।843।।

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के वचन ही महाऔषधि हैं, ये विषय सुख का विरेचन कराने वाले हैं, अमृतरूप है, जरामरणरूपी व्याधि की वेदना और सर्वदुःखों का क्षय करने वाले हैं।

देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति-पूजा विशेष फल को देने वाली है। पूज्य माताजी की वाणी जिनवाणी है। लेखनी में सरस्वती का वास है। जिनागम का सार बताने वाली, ज्ञानामृत का वितरण करने वाली, षट्खण्डागम की 16 पुस्तकों पर 'सिद्धान्तचिन्तामणि' नाम की संस्कृत टीका लिखने वाली, राष्ट्रगौरव, युगनायिका, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, वाग्देवी, डी. लिट्, दिव्यशक्ति आदि अनके उपाधियों से अलंकृत पूज्य माताजी इस युग के लिए वरदान हैं। इस पुस्तक की प्रूफ रीडिंग के माध्यम से मुझे जो स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ है, वह मेरे भव भ्रमण को दूर कर शीघ्र ही श्रुतज्ञान की प्राप्ति करावे, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटि-कोटि नमन।

हार्दिक उद्गार

–आर्यिका स्वर्णमती

बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के 3 बार दर्शन करने वाली, उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली, प्रथम पट्टशिष्य चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त कर ज्ञानमती नाम को सार्थक करने वाली, बीसवीं सदी की युगप्रवर्तिका, प्रथम बालब्रह्मचारिणी आर्यिका, चारित्रचन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी हैं।

पूज्य माताजी ने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना करते हुए अब तक लगभग 400 ग्रंथों की रचना की हैं जिनमें से अभी कुछ ग्रंथ अप्रकाशित हैं। आज के भौतिक युग में लोगों को धर्ममार्ग में लगाने के लिए भगवान की भक्ति, पूजा विधान, स्तुति आदि सशक्त माध्यम हैं।

माताजी की लेखनी से लिखा गया एक–एक शब्द मोती की माला के समान सुशोभित है। पूज्य माताजी ने भगवान के सहस्रनाम मंत्र से लेखनी का शुभारम्भ किया। अष्टसहस्री ग्रंथ पर स्याद्वाद चिन्तामणि नाम से हिन्दी टीका लिखी। षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ पर **'सिद्धान्त चिन्तामणि'** नाम से संस्कृत टीका 16 पुस्तकों की 3100 पृष्ठों में लिखकर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। नियमसार ग्रंथ पर **'स्याद्वादचन्द्रिका'** नाम से संस्कृत टीका एवं समयसार ग्रंथ पर **'ज्ञानज्योति'** हिन्दी टीका लिखी है।

स्वाध्याय के विषय में पूज्य माताजी कई बार कहा करती हैं—

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यः विशुद्धो भाति निर्वृतः।
अंगारवत्खलो दीप्तो, मली वा भस्म वा भवेत्।।

अर्थात् आचार्यों ने शास्त्र—श्रुत को अग्नि की संज्ञा दी है। जैसे-अग्नि भोजन भी पकाती है और जलाने का भी काम करती है। हम चाहे उसका यथायोग्य सदुपयोग करके उसे जीवनोपयोगी बना लें और चाहे उसका दुरुपयोग करके अपने शरीर को जला भी सकते हैं। इसी प्रकार सच्चे शास्त्रों को भव्य सम्यग्दृष्टि प्राणी पढ़कर अपने मन को विशुद्ध करके कर्मों का क्षय कर लेते हैं और खल—मिथ्यादृष्टि जन अपने चित्त को मलिन कर लेते हैं।

यह पुस्तक **'जिनमन्दिर मूर्ति निर्माण परम्परा'** बहुत ही सुन्दर एवं सभी मनुष्यों के लिए उपयोगी है। अतः इसका स्वाध्याय करके आप सभी अपने द्रव्य को जिनमन्दिर-मूर्ति निर्माण में लगाकर पुण्य एकत्रकर स्वर्ग एवं मोक्ष सुख को प्राप्त करें। पूज्य माताजी का चिन्तन वर्तमान में सभी जीवों के कल्याण की भावना को लिए हुए है, ऐसी महान साध्वी के श्री चरणों में बारम्बार नमन।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 400 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्मित 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम, ग्वालियर में चिन्मामणि पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) आचार्य श्री शांतिसागर सम्मेद शिखर ज्योति रथ (2014) भगवान ऋषभदेव विश्वशांति कलश यात्रा रथ-मांगीतुंगी (2015) के दो रथों का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

पुस्तक में प्रयुक्त ग्रंथों के नाम

1. श्री गौतमस्वामी विरचित-चैत्यभक्ति
2. आदिपुराण भाग-1
3. उत्तरपुराण
4. पद्मपुराण-भाग-1
5. आदिपुराण भाग-2
6. पद्मपुराण भाग-2
7. आराधना कथाकोष-संस्कृत
8. आराधना कथाकोष-हिन्दी
9. वसुनन्दि श्रावकाचार
10. धवला पुस्तक-6
11. प्रतिष्ठासारोद्धार
12. जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय
13. वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ
14. त्रिलोकसार
15. तिलोयपण्णत्ति
16. उमास्वामी श्रावकाचार
17. अभिषेक पाठ संग्रह
18. प्रतिष्ठातिलक
19. त्रिलोकभास्कर
20. भावसंग्रह
21. हरिवंशपुराण
22. जिनदत्त चरित्र
23. श्रीपाल चरित

मंगलाचरण

जिणसिद्धाणं पडिमा अकिट्टिमा किट्टिमा तु अदिसोहा।
रयणमया हेममया रूप्पमया ताणि वंदामि।।१।।

सिद्धांस्त्रैलोक्यमूर्धस्थां-स्त्रैकालिकानपि स्तुमः।
अनन्तानन्तमानांस्तान्, सर्वान् रत्नत्रयाप्तये।।२।।

त्रैलोक्येऽकृतचैत्यानि, ह्यकृत्रिमा जिनालयाः।
असंख्याताश्च तानि तान्, वन्दे त्रेधा त्रिशुद्धये।।३।।

त्रैकालिककृतान् वन्दे, जिनचैत्यजिनालयान्।
अनन्तानन्तप्रोक्तांस्ता - ननन्तगुणलब्धये।।४।।

विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	जिनमन्दिर मूर्ति निर्माण परम्परा श्री गौतमस्वामी विरचित-चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति एवं दैवसिक प्रतिक्रमण से कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमा वंदना	1 1
2.	युग की आदि में इन्द्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये (आदिपुराण से)	8
3.	कैलाश पर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गए जिनमंदिर (उत्तर पुराण से)	9
4.	कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जिनमंदिर बनवाये थे (पद्मपुराण से)	10
5.	सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमा बनवाईं (आदिपुराण से)	15
6.	हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये	16
7.	श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये (पद्मपुराण से)	19
8.	धाराशिव नगर में 1008 खम्भों का जिनमंदिर (आराधना कथाकोष से)	21
9.	द्वारावती में कुबेर द्वारा एक हजार शिखरों वाले जिनमंदिर का निर्माण (पद्मपुराण से)	23
10.	राजा दशरथ द्वारा जिनमंदिर का जीर्णोद्धार (पद्मपुराण से)	24
11.	भरत चक्रवर्ती ने गोपुरद्वारों एवं महाद्वारों पर घंटे बंधवाये, उनमें जिनबिंब बनवाये (आदिपुराण से)	25
12.	अयोध्या में श्री अरनाथ भगवान का मंदिर था (पद्मपुराण से)	27
13.	अयोध्या नगरी में श्री मुनिसुव्रतनाथ का मन्दिर था (पद्मपुराण से)	29
14.	गृहचैत्यालय एवं सप्तर्षि प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा (पद्मपुराण से)	30
15.	धरणेन्द्रदेव ने संजयंत मुनि की प्रतिमा बनवाई (उत्तर पुराण से)	31
16.	जिनेन्द्रदेव के दर्शन का फल (पद्मपुराण से)	34

विषय	पृष्ठ संख्या
17. जिनमंदिर एवं प्रतिमा निर्माण का फल (पद्मपुराण से)	35
18. जिनमंदिर व प्रतिमा बनवाने की महिमा (वसुनन्दि श्रावकाचार से)	36
19. जिनमंदिर व प्रतिमा बनवाने की महिमा (पद्मपुराण से)	36
20. जिनेन्द्र देव के दर्शन का फल (धवला पु. 6 से)	37
21. जिनप्रतिमा का लक्षण (यक्ष-यक्षी समेत) प्रतिष्ठा ग्रंथों से	39
22. शासन देव-देवी के प्रमाण (तिलोयपण्णत्ति से)	41
23. पूजा के प्रकरण में प्रमाण (16 अभिषेक पाठ संग्रह एवं प्रतिष्ठातिलक आदि से)	43
24. पंचामृत अभिषेक के प्रमाण	51
25. चंदन लेपन के प्रमाण	52
26. पुष्प चढ़ाने के प्रमाण	53
27. सचित्त पूजा निर्दोष है	53
28. स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण	54
29. जनेऊ धारण के प्रमाण	55
30. हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप में जिनप्रतिमाएं	56
31. हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप में जिनप्रतिमाएं	57
32. हस्तिनापुर में निर्मित तीन लोक रचना में जिनप्रतिमाएं	59
33. तीनलोक का ध्यान	62
34. प्रशस्ति	63
35. भजन-जिनमंदिर का निर्माण करो सब मिल के करो....	64

जिनमंदिर मूर्ति निर्माण परंपरा

(श्री गौतमस्वामी विरचित-चैत्यभक्ति से)

कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमा वन्दना

श्री गौतमगणधर देव चैत्यभक्ति में तीनों लोकों की अकृत्रिम और कृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना कर रहे हैं—

अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्[१]।।११।।

पद्यानुवाद (गणिनी ज्ञानमती)

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

अर्थ—तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थित मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को प्रणमन करता हूँ ।।११।।

१. चैत्यभक्ति श्लोक ११ से २२ तक।

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभव हेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

अर्थ—जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनका शरीर—यष्टि प्रभामंडल से दैदीप्यमान है, ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।।१२।।

तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमायें आयुध-गदा आदि से रहित वीतराग मुद्रा में हैं—

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्याप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

अर्थ—जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति कर अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिये वन्दन करता हूँ।।१३।।

ये प्रतिमायें क्रोधादि से रहित शांत छवि दर्शाती हैं—

कथयंति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

अर्थ—उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय का अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिये नमस्कार करता हूँ।।१४।।

श्री गौतमस्वामी भव-भव में जिनधर्म की याचना करते हैं—

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

अर्थ—तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे ।।१५।।

चतुर्णिकाय देवों के गृहों में व मध्यलोक के कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं-

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत् की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।

अर्थ—सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञानरूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिये कीर्तन करूँगा ।।१६।।

श्री गौतमस्वामी भवनवासी देवों के जिनमंदिरों की-जिनप्रतिमाओं की वन्दना करते हैं—

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिनमूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।

अर्थ—मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें।।१७।।

श्री गौतमस्वामी मध्यलोक के कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं को नमस्कार करते हैं—

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभव हेतु, सब जिनचैत्य जिनालय को।।१८।।

अर्थ—इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिंब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदन करता हूँ ।।१८।।

श्री गौतमस्वामी व्यंतर देवों के गृहों के जिनमंदिरों को नमस्कार कर रहे हैं—

ये व्यन्तरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

अर्थ— व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ।।१९।।

श्री गौतमस्वामी ज्योतिषी देवों के जिनमंदिरों की वंदना करते हैं—

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।

अर्थ— अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ ।।२०।।

श्री गौतमस्वामी वैमानिक देवों के जिनमंदिरों की जिनप्रतिमाओं को नमन कर रहे हैं—

वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।

अर्थ— जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबंधी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२१।।

श्री गौतमस्वामी स्तुति का फल माँग रहे हैं—

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्त्रव का हो रोधन।।२२।।

अर्थ— इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे ।।२२।।

तीन लोक के अकृत्रिम जिनमंदिर एक दृष्टि में—

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि।[१]

अधोलोक में खरभाग व पंकभाग में भवनवासी देवों के सात करोड़, बहत्तर लाख (७,७२०००००० + ८४,९७०२३) जिनमंदिर हैं। मध्यलोक में जम्बूद्वीप से लेकर तेरहवें रुचकवरद्वीप तक चार सौ अट्ठावन (४५८) जिनमंदिर तथा ऊर्ध्वलोक में सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस (८४, ९७०२३) जिनमंदिर हैं।

ये सर्व–७७२००००० + ४५८ + ८४९७०२३ = ८, ५६, ९७, ४८१ अर्थात् आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार, चार सौ इक्यासी जिनमंदिर हैं। इन सभी में १०८–१०८ जिनप्रतिमायें विराजमान हैं। अतः नव सौ पचीस करोड़, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार, नव सौ अड़तालीस जिनप्रतिमायें हैं–

८,५६,९७,४८१ × १०८ = ९२५,५३,२७ ९४८ जिनप्रतिमायें हो जाती हैं। इन सभी को मेरा कोटि–कोटि नमस्कार होवे।

इसके साथ ही व्यन्तर देवों के अधोलोक में असंख्यातों भवन हैं। मध्यलोक

१. श्री गौतम स्वामीकृत प्रतिक्रमण भक्ति से।

में जंबूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक असंख्यातों भवनपुर व आवास हैं। इन सभी में अकृत्रिम जिनमंदिर होने से व्यंतर देवों के असंख्यातों जिनमंदिर–जिनप्रतिमायें हैं।

इसी प्रकार ज्योतिर्वासी देवों के सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र व तारे जंबूद्वीप से लेकर अंतिम असंख्यातवें स्वयंभूरमण समुद्र तक माने हैं। ये ज्योतिषी देवों के विमान असंख्यातों हैं। इन सभी में एक–एक जिनमंदिर होने से ये मंदिर असंख्यातों हो गये हैं।

भवनवासी देवों के भी अगणित भवनपुर–आवास मध्यलोक में हैं। उन सभी में जिनमंदिर हैं।

इन व्यंतर देवों के, भवनवासी देवों के व ज्योतिषीदेवों के असंख्यातों जिनमंदिर व असंख्यातों जिनप्रतिमाओं को मेरा अनंत–अनंत नमस्कार होवे।

''चेइयरुक्खा य चेइयाणि।'' (श्रीगौतमस्वामी कृत प्रतिक्रमण भक्ति से)

ऐसे ही अकृत्रिम असंख्यातों चैत्यवृक्षों में अकृत्रिम जिनप्रतिमायें असंख्यातों हैं। अकृत्रिम नदी के निर्गम स्थान व प्रवेश स्थानों में, तोरणद्वारों में, नदी के पतन—गिरने के स्थानों में जितनी की अकृत्रिम जिनप्रतिमायें हैं, उन सभी को मेरा नमस्कार होवे।

अकृत्रिम व कृत्रिम जिनप्रतिमाओं की व्याख्या

जो अनादिकाल से अनंतोंकाल तक विद्यमान हैं, आगे भी अनंतानंत काल रहेंगी, स्वयंसिद्ध–स्वयं बनी हुई प्राकृतिक हैं, जिन्हें किन्हीं ने न बनाया है और न जिनका कभी विनाश होगा, जिनमें से एक अणुमात्र का भी कभी क्षरण नहीं होगा, ऐसे जिनमंदिर व ऐसी जिनप्रतिमायें अकृत्रिम कहलाती हैं। जिनका निर्माण किया–कराया जाता है, वे जिनमंदिर व प्रतिमायें कृत्रिम कहलाती हैं।

इस ग्रंथ में मध्यलोक में मात्र ढाईद्वीप तक जो कृत्रिम जिनमंदिर हैं, उनमें भी वर्तमान में भरतक्षेत्र के आर्यखंड में चतुर्थ काल में कतिपय मात्र जो जिनमंदिर इंद्रों द्वारा, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा बनवाये गये हैं। उन्हीं में से किंचित् मात्र मंदिरों का व जिनप्रतिमाओं का वर्णन है, जो कि तृतीयकाल के अंतिम समय में श्रीऋषभदेव के समय से लिया गया है। उन सभी जिनमंदिर–जिनप्रतिमाओं को मेरा अनंत–अनंत नमस्कार होवे।

श्रीगौतमस्वामी ने भी उन-उन तीर्थों को व प्रतिमाओं को नमस्कार किया है—

''णमंसामि सिद्धणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वदे सम्मेदे चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओ वि णिसीहियाओ जीव-लोयम्मि[१]।।''

पद्यानुवाद

ऊर्ध्व अधो अरु मध्यलोक में, सिद्धायतन नमूँ उनको।
सिद्धक्षेत्र अष्टापद सम्मेदाचल ऊर्जयन्त गिरि को।।
चंपा पावा नगरि मध्यमा हस्तिबालिका मंडप में।
और अन्य भी मनुज लोक में, तीर्थ क्षेत्र सबको प्रणमें।।

श्री भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाये गये कैलाशपर्वत पर जो रत्नों के जिनमंदिर थे। असंख्यातों वर्षों बाद आज से नव लाख वर्ष पूर्व श्रीरामचंद्र के पिता राजा दशरथ ने उन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया था, ऐसा पद्मपुराण ग्रंथ-जैन रामायण ग्रंथ में वर्णन आया है।

वर्तमान में चौबीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि-अष्टापद-कैलाश पर्वत, सम्मेदशिखर, चंपापुरी, पावापुरी, गिरनारपर्वत इन पवित्र तीर्थों पर व अन्य महापुरुषों की निर्वाण भूमियाँ-मांगीतुंगी, सोनागिरि, बड़वानी, पावागिरि आदि निर्वाण क्षेत्रों में, तीर्थंकर भगवंतों की जन्मभूमि १६ हैं—अयोध्या से कुंडलपुर तक, उनमें दीक्षाभूमि, केवलज्ञानभूमि प्रयाग, अहिच्छत्र, जृंभिका आदि तीर्थों पर, अन्यत्र भी इस भारतभूमि में जितने भी निर्वाण क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र आदि हैं व नगरों में, शहरों में, ग्राम आदि में जितने भी जिनमंदिर हैं, जितनी भी जिनप्रतिमायें हैं, उन सभी की यहाँ वंदना की गई है।

हम भी सर्वत्र त्रैकालिक सभी जिनमंदिर-जिनप्रतिमाओं की मन, वचन, काय से शिर झुकाकर अनंतानंत बार नमस्कार करते हैं।

१. श्री गौतमस्वामी कृत दैवसिक प्रतिक्रमण से।

युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये

मंगलाचरण

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१।।

(आदिपुराण से)

श्रुत्वेति तद्वचो दीनं करुणाप्रेरिताशयः।
मनः प्रणिदधावेवं भगवानादिपूरुषः[१]।।१४२।।

पूर्वापरविदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता।
साद्य प्रवर्त्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः।।१४३।।

षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णाश्रमस्थितिः।
यथा ग्रामगृहादीनां संस्त्यायाश्च पृथग्विधाः।।।१४४।।

तथात्राप्युचिता वृत्तिरुपायैरेभिरङ्गिनाम्।
नोपायान्तरमस्त्येषां प्राणिनां जीविकां प्रति।।१४५।।

कर्मभूरद्य जातेयं व्यतीतौ कल्पभूरुहाम्।
ततोऽत्र कर्मभिः षड्भिः प्रजानां जीविकोचिता।।१४६।।

युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये

(आदिपुराण से)

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे।।१४२।। कि पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।१४३।। वहाँ जिस प्रकार असि, मषी आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम-घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।।१४४-१४५।। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है इसलिए यहाँ प्रजा को असि, मषी आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।।१४६।।

१. आदिपुराण पर्व-१६, पृ. ३५९।

इत्याकलय्य तत्क्षेमवृत्त्युपायं क्षणं विभुः।
मुहुराश्वासयामास भा भैष्टेति तदा प्रजाः।।१४७।।
अथानुध्यानमात्रेण विभो शक्रः सहामरैः।
प्राप्तस्तज्जीवनोपायानित्यकार्षी द्विभागतः।।१४८।।
शुभे दिने सुनक्षत्रे सुमुहूर्त्ते शुभोदये।
स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषूच्चैरानुकूल्ये जगद्गुरोः।।१४९।।
कृतप्रथममाङ्गल्ये सुरेन्द्रो जिनमन्दिरम्।
न्यवेशयत् पुरस्यास्य मध्ये दिक्ष्वप्यनुक्रमात्।।१५०।।
कोसलादीन् महादेशान् साकेतादिपुराणि च।
सारामसीमनिगमान् खेटादींश्च न्यवेशयत्।।१५१।।

इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षण भर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार-बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।।१४७।। अथानन्तर भगवान् के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।।।१४८।। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद्गुरु भगवान् के हर एक प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और **फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।**।१४९-१५०।। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेटों की रचना की थी।।१५१।।

कैलाशपर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गये मंदिर

(उत्तरपुराण से)

राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलासे भरतेशिना।
गृहाः कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिरर्हताम्[१]।।१०७।।
तेषां गङ्गां प्रकुर्वीध्वं परिखां परितो गिरिम्।
इति तेऽपि तथा कुर्वन् दण्डरत्नेन सत्वरम्।।१०८।।

---

१. उत्तरपुराण पर्व ४८, पृ. १०।

आत्मशुद्धि से भरे सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने कहा कि यदि आप हम लोगों को कोई कार्य नहीं देते हैं तो हम भोजन भी नहीं करते हैं।।१०५।। पुत्रों का निवेदन सुनकर राजा कुछ चिन्ता में पड़ गये। वे सोचने लगे कि इन्हें कौन सा कार्य दिया जावे। अकस्मात् उन्हें याद आ गई कि अभी धर्म का एक कार्य बाकी है। उन्होंने हर्षित होकर आज्ञा दी कि **भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर महारत्नों से अरहन्तदेव के चौबीस मन्दिर बनवाये हैं,** तुम लोग उस पर्वत के चारों ओर गङ्गा नदी को उन मन्दिरों की परिखा बना दो।' उन राजपुत्रों ने भी पिता की आज्ञानुसार दण्डरत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया।।१०६-१०८।।

कैलाशपर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जिनमंदिर बनवाये थे

(पद्मपुराण से[१])

अथानन्तर एक बार दशानन नित्यालोक नगर में राजा नित्यालोक की श्रीदेवी से समुत्पन्न रत्नावली नाम की पुत्री को विवाह कर बड़े हर्ष के साथ आकाशमार्ग से अपनी नगरी की ओर आ रहा था। उस समय उसके मुकुट में जो रत्न लगे थे उनकी किरणों से आकाश सुशोभित हो रहा था।।१०२-१०३।। जिस प्रकार बड़ा भारी वायुमण्डल मेरु के तट को पाकर सहसा रुक जाता है उसी प्रकार मन के समान चंचल पुष्पक विमान सहसा रुक गया।।१०४।। जब पुष्पक विमान की गति रुक गयी और घण्टा आदि से उत्पन्न होने वाला शब्द भंग हो गया तब ऐसा जान पड़ता था मानो तेजहीन होने से लज्जा के कारण उसने मौन ही ले रखा था।।१०५।। विमान को रुका देख दशानन ने क्रोध से दमकते हुए कहा कि अरे यहाँ कौन है ? कौन है ?।।१०६।। तब सर्व वृत्तान्त को जानने वाले मारीचि ने कहा कि हे देव! सुनो, यहाँ कैलास पर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमा योग से विराजमान हैं।।१०७।। ये सूर्य के सम्मुख विद्यमान हैं और अपनी किरणों से सूर्य की किरणों को इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहे हैं। समान शिलातल पर ये रत्नों के स्तम्भ के समान अवस्थित हैं।।१०८।। घोर तपश्चरण को धारण करने वाले ये कोई महान् वीर पुरुष हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। इन्हीं से वह वृत्तान्त हुआ है।।१०९।। इन मुनिराज के प्रभाव से जब तक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तब तक शीघ्र की इस स्थान से विमान को लौटा लेता हूँ।।११०।। अथानन्तर मारीच के

---

१. पद्मपुराण, पर्व ९, पृ. २१४ से २२१।

वचन सुनकर अपने पराक्रम के गर्व से गर्वित दशानन ने कैलास पर्वत की ओर देखा।।१११।। दशानन ने उस पर्वत पर उतरकर उन महामुनि के दर्शन किये। वे महामुनि ध्यानरूपी समुद्र में निमग्न थे और तेज के द्वारा चारों ओर मण्डल बाँध रहे थे।।१२६।। दिग्गजों के शुण्डादण्ड के समान उनकी दोनों भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पों से आवेष्टित चन्दन का बड़ा वृक्ष ही हो।।१२७।। वे आतापन योग में शिलापीठ के ऊपर निश्चल बैठे थे और प्राणियों के प्रति ऐसा संशय उत्पन्न कर रहे थे कि ये जीवित हैं भी या नहीं।।१२८।। तदनन्तर 'यह बालि है' ऐसा जानकर दशानन पिछले वैर का स्मरण करता हुआ क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठा।।१२९।। जो ओंठ चबा रहा था, जिसकी आवाज अत्यन्त कर्कश थी और जो अत्यन्त देदीप्यमान आकार का धारक था ऐसा दशानन भ्रकुटी बाँधकर बड़ी निर्भयता के साथ मुनिराज से कहने लगा।।१३०।। कि अहो! तुमने यह बड़ा अच्छा तप करना प्रारम्भ किया है कि अब भी अभिमान से मेरा विमान रोका जा रहा है।।१३१।। धर्म कहाँ और क्रोध कहाँ ? अरे दुर्बुद्धि ! तू व्यर्थ ही श्रम कर रहा है और अमृत तथा विष को एक करना चाहता है।।१३२।। इसलिए मैं तेरे इस उद्धत अहंकार को आज ही नष्ट किये देता हूँ। तू जिस कैलास पर्वत पर बैठा है उसे उखाड़कर तेरे ही साथ अभी समुद्र में फेंकता हूँ।।१३३।।

तदनन्तर उसने समस्त विद्याओं का ध्यान किया जिससे आकर उन्होंने उसे घेर लिया। अब दशानन ने इन्द्र के समान महाभयंकर रूप बनाया और महाबाहुरूपी वन से सब ओर सघन अन्धकार फैलाता हुआ वह पृथिवी को भेदकर पाताल में प्रविष्ट हुआ। पाप करने में वह उद्यत था ही।।१३४-१३५।। तदनन्तर क्रोध के कारण जिसके नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे थे और जिसका मुख क्रोध से मुखरित था ऐसे प्रबल पराक्रमी दशानन ने अपनी भुजाओं से कैलास को उठाना प्रारम्भ किया।।१३६।। आखिर, पृथिवी को अत्यन्त चंचल करता हुआ कैलास पर्वत स्वस्थान से चलित हो गया।।१३७।। तदनन्तर जब समस्त संसार संवर्तक नामक वायु से ही मानो आकुलित हो गया था तब भगवान् बाली मुनिराज ने अवधिज्ञान से दशानन नामक राक्षस को जान लिया।।१४५।। यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ भी पीड़ा नहीं हुई थी और पहले की तरह उनका समस्त शरीर निश्चल रूप से अवस्थित था तथापि वे धीर, वीर और क्रोध से रहित हो अपने चित्त में इस प्रकार विचार करने लगे कि।।१४६।।

कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमम्।
सर्वरत्नमयं तुङ्गं बहुरूपविराजितम्।।१४७।।

प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासरैः।
भा विनाशि चलत्थस्मिन् पर्वते भिन्नपर्वणि।।१४८।।
ध्यात्वेति चरणाङ्गुष्टपीडितं गिरिमस्तकम्।
चकार शोभनध्यानाददूरीकृतचेतनः।।१४९।।

चक्रवर्ती भरत ने ये नाना प्रकार के सर्वरत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर बनवाये हैं। भक्ति से भरे सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं सो इस पर्वत के विचलित हो जाने पर कहीं ये जिनमन्दिर नष्ट न हो जावें।।१४७।। ऐसा विचारकर शुभ ध्यान के निकट ही जिनकी चेतना थी ऐसे मुनिराज बाली ने पर्वत के मस्तक को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया।।१४८-१४९।। तदनन्तर जिसकी भुजाओं का वन (बल) बहुत भारी बोझ से आक्रान्त होने के कारण अत्यधिक टूट रहा था, जो दुख से आकुल था, जिसकी लाल-लाल मनोहर आँखें चंचल हो रही थीं ऐसा दशानन अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसके सिर का मुकुट टूटकर नीचे गिर गया और उस नंगे सिर पर पर्वत का भार आ पड़ा। नीचे धँसती हुई पृथिवी पर उसने घुटने टेक दिये। स्थूल होने के कारण उसकी जंघाएँ मांसपेशियों में निमग्न हो गयीं।।१५०-१५१।। उसके शरीर से शीघ्र ही पसीने की धारा बह निकली और उससे उसने रसातल को धो दिया। उसका सारा शरीर कछुए के समान संकुचित हो गया।।१५२।। उस समय चूँकि उसने सर्व प्रयत्न से चिल्लाकर समस्त संसार को शब्दायमान कर दिया था इसलिए वह पीछे चलकर सर्वत्र प्रचलित 'रावण' इस नाम को प्राप्त हुआ।।१५३।। रावण की स्त्रियों का समूह अपने स्वामी के उस अश्रुतपूर्ण दीन-हीन शब्द को सुनकर व्याकुल हो विलाप करने लगा।।१५४।। मन्त्री लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। वे युद्ध के लिए तैयार हो व्यर्थ ही इधर-उधर फिरने लगे। उनके वचन बार-बार बीच में ही स्खलित हो जाते थे और हथियार उनके हाथ से छूट जाते थे।।१५५।। मुनिराज के वीर्य के प्रभाव से देवों के दुन्दुभि बजने लगे और भ्रमर सहित फूलों की वृष्टि आकाश को आच्छादित कर पड़ने लगी।।१५६।।

क्रीडा करना जिनका स्वभाव था ऐसे देवकुमार आकाश में नृत्य करने लगे और देवियों की संगीत ध्वनि वंशी की मधुर ध्वनि के साथ सर्वत्र उठने लगी।।१५७।। तदनन्तर मन्दोदरी ने दीन होकर मुनिराज को प्रणाम कर याचना की कि हे अद्भुत पराक्रम के धारी! मेरे लिए पतिभिक्षा दीजिए।१५८।। तब महामुनि ने दयावश पैर का अँगूठा ढीला कर लिया और रावण भी पर्वत को जहां का तहां छोड़ क्लेशरूपी अटवी से बाहर निकला।।१५९।।

तदनन्तर जिसने तप का बल जान लिया था ऐसे रावण ने जाकर मुनिराज को प्रणाम कर बार-बार क्षमा माँगी और इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया।।१६०।। कि हे पूज्य! आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के चरणों को छोड़कर अन्य के

लिए नमस्कार नहीं करूँगा यह उसी की सामर्थ्य का फल है।।१६१।। हे भगवन्! आपके तप का महाफल निश्चय से सम्पन्न है इसीलिए तो आप तीन लोक को अन्यथा करने में समर्थ हैं।।१६२।। तप से समृद्ध मुनियों की थोड़े ही प्रयत्न से उत्पन्न जैसी सामर्थ्य देखी जाती है हे नाथ! वैसी सामर्थ्य इन्द्रों की भी नहीं देखी जाती है।।१६३।। इस प्रकार स्तुति कर उसने मुनिराज को प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, अपने आपकी बहुत निन्दा की और दुःखवश मुँह से सू-सू शब्द कर रुदन किया।।१७३।। मुनिराज के समीप जो जिनमन्दिर था लज्जा से युक्त और विषयों से विरक्त रावण उसी के अन्दर चला गया।।१७४।। वहाँ उसने चन्द्रहास नामक खड्ग को अनादर से पृथिवी पर फेंक दिया और अपनी स्त्रियों से युक्त होकर जिनेन्द्रदेव की पूजा की।।१७५।। उसके भाव भक्ति में इतने लीन हो गये थे कि उसने अपनी भुजा की नाड़ीरूपी तन्त्री को खींचकर वीणा बजायी और सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा जिनराज का गुणगान किया।।१७६।।

ऋषभाय नभो नित्यभजिताय नमो नमः।
संभवाय नमोऽजस्त्रमभिनन्दनरूढये।।१८५।।

नमः सुमतये पद्मप्रभाय सततं नमः।
सुपार्श्वाय नमः शश्वन्नमश्चन्द्रसमत्विषे।।१८६।।

नमोऽस्तु पुष्पदन्ताय शीतलाय नमो नमः।
श्रेयसे वासुपूज्याय नमो लब्धात्मतेजसे।।१८७।।

विमलाय नमस्त्रेधा नमोऽनन्ताय संततम्।
नमो धर्माय सौख्यानां नमो मूलाय शान्तये।।१८८।।

नमः कुन्थुजिनेन्द्राय नमोऽरस्वामिने सदा।
नमो मल्लिमहेशाय नमः सुव्रतदायिने।।१८९।।

अन्येभ्यश्च भविष्यद्भयो भूतेभ्यश्च सुभावतः।
नमोऽस्तु जिननाथेभ्यः श्रमणेभ्यश्च सर्वदा।।१९०।।

नमः सम्यक्त्वयुक्ताय ज्ञानायैकान्तनाशिने।
दर्शनाय नमोऽजस्त्रं सिद्धेभ्योऽनारतं नमः।।१९१।।

ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयोनाथ, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, सौख्यों के मूल कारण शान्तिनाथ, कुन्थु जिनेन्द्र, अरनाथ, मल्लि महाराज और मुनिसुव्रत भगवान् इन वर्तमान तीर्थंकरों को मन-

वचन-काय से नमस्कार हो। इनके सिवाय जो अन्य भूत और भविष्यत्काल सम्बन्धी तीर्थंकर हैं उन्हें नमस्कार हो। साधुओं के लिए सदा नमस्कार हो। सम्यक्त्वसहित ज्ञान और एकान्तवाद को नष्ट करने वाले दर्शन के लिए निरन्तर नमस्कार हो तथा सिद्ध परमेश्वर के लिए सदा नमस्कार हो।।१८५-१९१।।

सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं

(आदिपुराण से)

कारयन्ती जिनेन्द्रार्चाश्चित्रा मणिमयीर्बहूः।
तासां हिरण्मयान्येव विश्वोपकरणान्यपि[1]।।१७३।।

तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती।
मुहुः स्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवती भक्तितोऽर्हतः।।१७४।।

ददती पात्रदानानि मानयन्ती महामुनीन्।
शृण्वती धर्ममाकर्ण्य भावयन्ती मुहुर्मुहुः।।१७५।।

आप्तागमपदार्थांश्च प्राप्तसम्यक्त्वशुद्धिका।
अथ फाल्गुननन्दीश्वरेऽसौ भक्त्या जिनेशिनाम्।।१७६।।

विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चा यथाविधि।
कृतोपवासा तन्वङ्गी शेषां दातुमुपागता।।१७७।।

नृपं सिंहासनासीनं सोऽप्युत्थाय कृताञ्जलिः।
तद्दत्तशेषामादाय निधाय शिरसि स्वयम्।।१७८।।

उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके त्वं प्रयाहि ते।
शरणं पारणाकाल इति कन्यां व्यसर्जयत्।।१७९।।

सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं

(आदिपुराण से)

उस सुलोचना ने श्री जिनेन्द्रदेव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ बनवाई थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण ही के बनवाये थे। प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जाने के बाद वह उन प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थपूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अर्हन्तदेव की भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियों का सम्मान करती थी, धर्म सुनती थी तथा धर्म को सुनकर आप्त, आगम और पदार्थों का बार-बार चिन्तवन करती हुई सम्यग्दर्शन की शुद्धता को प्राप्त करती थी। अथानन्तर—फाल्गुन महीने की अष्टान्हिका में उसने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव की अष्टाह्निकी पूजा की, विधिपूर्वक प्रतिमाओं की पूजा की, उपवास किया और वह कृशांगी पूजा के शेषाक्षत देने के लिए सिंहासन पर बैठे हुए राजा अकम्पन के पास गयी। राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिए हुए शेषाक्षत लेकर स्वयं अपने

१. आदिपुराण भाग-२, ३२३-३२४।

हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

अथासावन्यदापृच्छत् सुमालिनमुदद्भुतः।
उच्चैर्गगनमारूढो विनयाननविग्रहः[1]।।२७२।।

सरसीरहितेऽमुष्मिन् पूज्यपर्वतमूर्द्धनि।
वनानि पश्य पद्मानां जातान्येतन्महाद्भुतम्।।२७३।।

तिष्ठन्ति निश्चलाः स्वामिन् कथमत्र महीतले।
पतिता विविधच्छायाः सुमहान्तः पयोमुचः।।२७४।।

नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा सुभालो तमथागमत्।
नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः।।२७५।।

सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः।
शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः।।२७६।।

कारिता हरिषेणेन सज्जनेन महात्मना।
एतान् वत्स नमस्य त्वं भव पूतमनाः क्षणात्।।२७७।।

मस्तक पर रखे तथा यह कहकर कन्या को विदा किया कि हे पुत्रि, तू उपवास से खिन्न हो रही है अब घर जा, यह तेरे पारणा का समय है।।१७३ से १७९।।

हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

अथानन्तर एक दिन विनय से जिसका शरीर झुक रहा था, ऐसा दशानन आकाश में बहुत ऊँचे चढ़कर अपने दादा सुमाली से आश्चर्यचकित हो पूछता है कि हे पूज्य! इधर इस पर्वत के शिखर पर सरोवर तो नहीं है पर कमलों का वन लहलहा रहा है सो इस महाआश्चर्य को आप देखें।।२७२-२७३।। यहाँ पृथ्वीतल पर पड़े रंग-बिरंगे बड़े-बड़े मेघ निश्चल होकर कैसे खड़े हैं ?।।२७४।। तब सुमाली ने 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दशानन से कहा कि हे वत्स! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं।।२७५।। किन्तु सफेद पताकाएँ जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे-ऐसे ये जिनमन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।।२७६।। **ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुए हैं।** हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर

१. पद्मपुराण पर्व-८, पृ. १८७, १८८, १९६।

ततस्तत्रस्थ एवासौ नमस्कृत्य जिनालयान्।
उपाच विस्मयापन्नो धनदस्य विमर्दकः।।२७८।।
आसीत्किं तस्य माहात्म्यं हरिषेणस्य कथ्यताम्।
प्रतीक्ष्यतम येनासौ भवद्भिरिति कीर्तितः।।२७९।।
सुमाली न्यगदच्चैवं साधु पृष्टं दशानन।
चरितं हरिषेणस्य शृणु पापविदारणम्।।२८०।।
काम्पिल्यनगरे राजा नाम्ना मृगपतिध्वजः।
बभूव यशसा व्याप्तसमस्तभुवनो महान्।।२८१।।
महिषी तस्य वप्राह्वा प्रमदागुणशालिनी।
अभूत् सौभाग्यतः प्राप्ता पत्नीशतललामताम्।।२८२।।
हरिषेणः समुत्पन्नः स ताभ्यां परमोदयः।
चतुःषष्ट्या शुभैर्युक्तो लक्षणैः क्षतदुष्कृतः।।२८३।।
वप्रया चान्यदा जैने मते भ्रमयितुं रथे।
आष्टाह्निकमहानन्दे नगरे धर्मशीलया।।२८४।।
महालक्ष्मीरिति ख्याता सौभाग्यमदविह्वला।
अवृत्तमवदत्तस्याः सपत्नी दुर्विचेष्टिता।।२८५।।

और क्षण-भर में अपने हृदय को पवित्र कर।।२७७।। तदनन्तर वैश्रवण का मानमर्दन करने वाले दशानन ने वहीं खड़े रहकर जिनालयों को नमस्कार किया और आश्चर्यचकित हो सुमाली से पूछा कि पूज्यवर! हरिषेण का ऐसा क्या माहात्म्य था कि जिससे आपने उनका इस तरह कथन किया है ?।।२७८-२७९।। तब सुमाली ने कहा कि हे दशानन! तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब पाप को नष्ट करने वाला हरिषेण का चरित्र सुन।।२८०।। काम्पिल्य नगर में अपने यश के द्वारा समस्त संसार को व्याप्त करने वाला सिंहध्वज नाम का एक बड़ा राजा रहता था।।२८१।। उसकी वप्रा नाम की पटरानी थी जो स्त्रियों के योग्य गुणों से सुशोभित थी तथा अपने सौभाग्य के कारण सैकड़ों रानियों में आभूषणपना को प्राप्त थी।।२८२।। उन दोनों से परम अभ्युदय को धारण करने वाला हरिषेण नाम का पुत्र हुआ। वह पुत्र उत्तमोत्तम चौंसठ लक्षणों से युक्त था तथा पापों को नष्ट करने वाला था।।२८३।। किसी एक समय आष्टान्हिक महोत्सव आया सो धर्मशील वप्रा रानी ने नगर में जिनेन्द्र भगवान् का रथ निकलवाना चाहा।।२८४।। राजा सिंहध्वज की महालक्ष्मी नामक दूसरी रानी थी जो कि सौभाग्य के गर्व से सदा विह्वल

पूर्वं ब्रह्मरथो यातु मदीयः पुरवर्त्मनि।
भ्रमिष्यति ततः पश्चाद्वप्रया कारितो रथः।।२८६।।
इति श्रुत्वा ततो वप्रा कुलिशेनेव ताडिता।
हृदये दुःखसंतप्ता प्रतिज्ञामकरोदिमाम्।।२८७।।
भ्रमिष्यति रथोऽयं मे प्रथमं नगरे यदि।
पूर्ववत्पुनराहारं करिष्येऽतोऽन्यथा तु न।।२८८।।
इत्युक्त्वा च बबन्धासौ प्रतिज्ञालक्ष्मवेणिकाम्।
व्यापाररहितावस्थाशोकम्लानास्यपङ्कजा ।।२८९।।
ततः काम्पिल्यमागत्य युक्तश्चक्रधरश्रिया।
द्वात्रिंशता नरेन्द्राणां सहस्त्राणां समन्वितः।।३९४।।
शिरसा मुकुटन्यस्तमणिप्रकरभासिना।
ननाम चरणौ मातुर्विनीतो रचिताञ्जलिः।।३९५।।
ततस्तं तद्विधं दृष्ट्वा पुत्रं वप्रा दशानन।
संभूता न स्वगात्रेषु तोषाश्रुव्याप्तलोचना।।३९६।।
ततो भ्रामयता तेन सूर्यवर्णान् महारथान्।
काम्पिल्यनगरे मातुः कृतं सफलमीप्सितम्।।३९७।।

रहती थी। अनेक खोटी चेष्टाओं से भरी महालक्ष्मी वप्रा की सौत थी इसलिए उसने उसके विरुद्ध आवाज उठायी कि पहले मेरा ब्रह्मरथ नगर की गलियों में घूमेगा। उसके पीछे वप्रा रानी के द्वारा बनवाया हुआ जैनरथ घूम सकेगा।।२८५-२८६।। यह सुनकर वप्रा को इतना दुःख हुआ कि मानो उसके हृदय में वज्र की ही चोट लगी हो। दुःख से सन्तप्त होकर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा यह रथ नगर में पहले घूमेगा तो मैं पूर्व की तरह पुनः आहार करूँगी अन्यथा नहीं।।२८७-२८८।। तदनन्तर चक्रवर्ती की लक्ष्मी से युक्त होकर वह हरिषेण पुत्र काम्पिल्यनगर आया। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसके साथ थे।।३९४।। उसने मुकुट में लगे मणियों के समूह से सुशोभित शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बड़ी विनय से माता के चरणों में नमस्कार किया।।३९५।। सुमाली दशानन से कहते हैं कि हे दशानन! उस समय उक्त प्रकार के हरिषेण पुत्र को देखकर वप्रा के हर्ष का पार नहीं रहा। वह अपने अंगों में नहीं समा सकी तथा हर्ष के आँसुओं से उसके दोनों नेत्र भर गये।।३९६।। तदनन्तर उसने सूर्य के समान तेजस्वी बड़े-बड़े रथ काम्पिल्यनगर में घुमाये और इस तरह अपनी माता का मनोरथ सफल किया।।३९७।। इस कार्य से मुनि

श्रमणश्रावकाणां च जातः परमसंमदः।
बहवश्च परिप्राप्ताः शासनं जिनदेशितम्।।३९८।।
तेनामी कारिता भान्ति नानावर्णाजिनालयाः।
भूपर्वतनदीसङ्गपुरग्रामादिधून्नताः।।३९९।।
कृत्वा चिरमसौ राज्यं प्रव्रज्य सुमहामनाः।
तपः कृत्वा परं प्राप्तस्त्रिलोकशिखरं विभुः।।४००।।

श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना।
निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्त्रशः[1]।।२७।।
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः।
गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिताः।।२८।।
सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः।
सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाचिताः।।२९।।

और श्रावकों को परम हर्ष हुआ तथा बहुत से लोगों ने जिनधर्म धारण किया।।३९८।। **पृथिवी, पर्वत, नदियों के समागम स्थान, नगर तथा गाँव आदि में जो नाना रंग के ऊँचे-ऊँचे जिनालय शोभित हो रहे हैं वे सब उसी के बनवाये हैं**।।३९९।। उदार हृदय को धारण करने वाले हरिषेण ने चिरकाल तक राज्य कर दीक्षा ले ली और परम तपश्चरण कर तीन लोक का शिखर अर्थात् सिद्धालय प्राप्त कर लिया।।४००।।

श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस वंशगिरि पर जगत् के चन्द्रस्वरूप **राम ने जिनेन्द्र भगवान् की हजारों प्रतिमाएँ बनवायीं** थीं।।२७।। तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदि की रचना से शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणों से युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखा से सहित थे, सफेद और सुन्दर पताकाओं से युक्त थे,

---

१. पद्मपुराण, पर्व ४०, पृ. १९६ से १९८ तक।

मृदङ्गवंशमुरजसंगीतोत्तमनिस्वनाः ।
झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः।।३०।।
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः ।
विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः।।३१।।
रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः।
पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः।।३२।।

उपजातिवृत्तम्

एषऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो बहुधानुसानुः।
विलम्पतीभिः कुकुभां समूहं भासाचकाज्जैनगृहावलीभिः।।४४।।
रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि।
निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्रविप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः।।४५।।

बड़े-बड़े घण्टाओं के शब्द से व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरज का संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियों के शब्द से अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओं के द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे राम के बनवाये जिनमन्दिरों की पंक्तियां उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं।।२८-३१।।

उन मन्दिरों में सब लोगों के द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं।।३२।।

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभा से सम्पन्न थीं तथा जिसके शिखर अनेक धातुओं से युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओं के समूह को लिप्त करने वाली जिनमन्दिरों की पंक्ति से अतिशय सुशोभित होता था।।४४।। चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्र ने जिनेन्द्र भगवान् के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला वह पर्वत 'रामगिरि' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।४५।।

धाराशिव नगर में १००८ खम्भों का जिनमंदिर

(आराधना कथाकोष से)

आराधना कथाकोष में करकण्डु राजा की कथा में १००८ खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है—

मार्गे तेरपुराभ्यर्णे संस्थितः सैन्यसंयुतः।
तदागत्य च भिल्लाभ्यां तं प्रणम्य प्रजल्पितम्[१]।।१४३।।

अस्मात्तेरपुरादस्ति दक्षिणस्यां दिशि प्रभो।
गव्यूतिकान्तरे चारु पर्वतस्योपरिस्थितम्।।१४४।।

धाराशिवपुरं चास्ति सहस्रस्तंभसंभवम्।
श्रीमज्जिनेन्द्रदेवस्य भवनं सुमनोहरम्।।१४५।।

तस्योपरि तथा शैल-मस्तके संप्रवर्त्तते।
वल्मीकं तच्च सद्धस्ती शुभो भक्त्या दिनं प्रति।।१४६।।

शुण्डादण्डेन सत्तोयं गृहीत्वा कमलं सुधीः।
समागत्य परीत्योच्चैः समभ्यर्च्य नमत्यलम्।।१४७।।

धाराशिव नगर में १००८ खम्भों का जिनमंदिर

आराधना कथाकोष में करकण्डु राजा की कथा में १००८ खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है—

रास्ते में तेरपुर के पास राजा करकण्डु का पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलों ने आकर नम्र मस्तक से इनसे प्रार्थना की –राजाधिराज, हमारे तेरपुर से दो–कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटा सा धाराशिव नाम का गाँव बसा हुआ है। इस गाँव में एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं। वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखने को चलें। इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्य की बात है कि वहाँ एक बाँवी है। एक हाथी रोज अपनी सूँड में थोड़ा सा पानी और एक कमल का फूल लिये वहाँ आता है और उस बाँवी की परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है। इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है। उसका यह प्रतिदिन का नियम है। महाराज, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है। करकण्डु भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर राजा

१. आराधना कथाकोष–संस्कृत–पृ. ४४९।

इत्याकर्ण्य प्रहर्षेण ताभ्यां दत्वोचितं द्रुतम्।
करकण्डुर्महाराजो जिनभक्तिपरायणः।।१४८।।

गत्वा तत्र समालोक्य जिनेन्द्रभवनं शुभम्।
समभ्यर्च्य जिनाधीशान्स्वर्गमोक्षसुखप्रदान्।।१४९।।

स्तुतिं चक्रे च सद्भक्त्या शर्मकोटिविधायिनीम्।
प्रमादो नैव सद्दृष्टे-र्धर्मकर्मणि सर्वदा।।१५०।।

ततो दृष्ट्वा च वाल्मीकिं पूजयन्तं महाद्विपम्।
अत्रास्ति कारणं किंचिच्चेतसि संविचार्य च।।१५१।।

तद्वल्मीकं समुन्मूल्य मंजूषां तत्र संस्थिताम्।
दृष्ट्वोदघाट्य प्रयत्नेन वीक्ष्य रत्नमयीं च सः।।१५२।।

श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रस्य प्रतिमां पापनाशिनीम्।
सन्तुष्टो मानसे चारु-सद्दृष्टिर्धर्मवत्सलः।।१५३।।

तस्याश्च भवनं चारु कारयित्वा सुभक्तितः।
सुधीरग्गलदेवाख्यं स्थापयामास तत्र ताम्।।१५४।।

बहुत प्रसन्न हुआ। इस समाचार को लाने वाले भीलों को उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिये उस कौतुकमय स्थान को देखने गया। पहले उसने जिनमंदिर जाकर भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा की, स्तुति की। सच है, धर्मात्मा पुरुष धर्म के कामों में कभी प्रमाद–आलस नहीं करते। बाद में वह उस बाँवी की जगह गया। उसने वहाँ भीलों के कहे माफिक हाथी को उस बाँवी की पूजा करते पाया। देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। नहीं तो इस पशु में ऐसा भक्ति भाव नहीं देखा जाता। यह विचार कर उसने उस बाँवी को खुदवाया। उसमें से एक सन्दूक निकली। उसने उसे खोलकर देखा। सन्दूक में एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवान की पवित्र प्रतिमा थी। उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डु राजा को अतिशय प्रसन्नता हुई उसने तब वहाँ 'अग्गलदेव' नाम का एक विशाल जिनमन्दिर बनवाकर उसमें बड़े उत्सव के साथ उस प्रतिमा को विराजमान किया।[१]

१. आराधना कथाकोष हिन्दी–पृ. ४८४, ४८५।

द्वारावती में कुबेर द्वारा एक हजार शिखरों वाले जिनमंदिर का निर्माण

(उत्तर पुराण से)

इतो जलनिधेस्तीरे बले यादवभूभुजाम्।
निविष्टवति निर्मापयितुं स्थानीयमात्मनः[1]।।१८।।

अष्टोपवासमादाय विधिमन्त्रपुरस्सरम्।
कंसारिःशुद्धभावेन दर्भशय्यातलं गतः।।१९।।

अश्वाकृतिधरं देवं मामारूह्य पयोनिधेः।
गच्छतस्ते भवेन्मध्ये पुरं द्वादशयोजनम्।।२०।।

इत्युक्तो नैगमाख्येन सुरेण मधुसूदनः।
चक्रे तथैव निश्चित्य सति पुण्ये न कः सखा।।२१।।

प्राप्तवेगोद्धतौ तस्मिन्नारूढे तुरगद्विषा।
हये धावति निर्द्वन्द्वं निश्चलत्कर्णचामरे।।२२।।

द्वेधाभेदभयाद्वार्धिर्भयादिव हरेरयात्।
भेद्यो धीशक्तियुक्तेन सङ्घातोऽपि जलात्मनाम्।।२३।।

शक्राज्ञया तदा तत्र निधीशो विधिवर्धितम्।
सहस्रकूटं व्याभासि भास्वद्रत्नमयं महत्।।२४।।

कृत्वा जिनगृहं पूर्वं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्।
वप्रप्राकारपरिखागोपुराट्टालकादिभिः ।।२५।।

राजमानां हरेः पुण्यात्तीर्थेशस्य च सम्भवात्।
निर्ममे नगरीं रम्यां सारपुण्यसमन्विताम्।।२६।।

सरित्पतिमहावीचीभुजालिङ्गितगोपुराम्।
दीप्त्या द्वारवतीसञ्ज्ञां हसन्तीं वामरीं पुरीम्।।२७।।

सपिता साग्रजो विष्णुस्तां प्रविश्य यथासुखम्।
लक्ष्मीकटाक्षसंवीक्ष्यस्तस्थिवान्यादवैः सह।।२८।।

इधर चलते-चलते यादवों की सेना अपना स्थान बनाने के लिए समुद्र के किनारे ठहर गई।।१८।। वहाँ कृष्ण ने शुद्ध भावों से दर्भ के आसन पर बैठकर विधिपूर्वक मन्त्र का जाप करते हुए अष्टोपवास का नियम लिया। उसी समय नैगम नामके देव ने कहा

१. उत्तरपुराण-पर्व-७१, पृ. ३७६।

कि मैं घोड़ा का रूप रखकर आऊँगा सो मुझ पर सवार होकर तुम समुद्र के भीतर बारह योजन तक चले जाना। वहाँ तुम्हारे लिए नगर बन जायेगा। नैगम देव की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने निश्चयानुसार वैसा ही किया सो ठीक ही है, क्योंकि पुण्य के रहते हुए कौन मित्र नहीं हो जाता ?।।१९-२१।। जो प्राप्त हुए वेग से उद्धत है, जिस पर श्रीकृष्ण बैठे हुए हैं और जिसके कानों के चमर निश्चल है ऐसा घोड़ा जब दौड़ने लगा तब मानो श्रीकृष्ण के भय से ही समुद्र दो भेदों को प्राप्त हो गया सो ठीक ही है, क्योंकि बुद्धि और शक्ति से युक्त मनुष्यों के द्वारा जल का (पक्ष में मूर्ख लोगों का)समूह भेद को प्राप्त हो ही जाता है।।२२-२३।। उसी समय वहाँ श्रीकृष्ण तथा होनहार नेमिनाथ तीर्थंकर के पुण्य से इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने एक सुन्दर नगरी की रचना की । जिसमें सबसे पहले उसने विधिपूर्वक मंगलों का मांगलिक स्थान और **एक हजार शिखरों से सुशोभित देदीप्यमान एक बड़ा जिनमंन्दिर बनाया,** फिर वप्र, कोट, परिखा, गोपुर तथा अट्टालिका आदि से सुशोभित,पुण्यात्मा जीवों से युक्त मनोहर नगरी बनाई । समुद्र अपनी बड़ी-बड़ी तरङ्गरूपी भुजाओं से उस नगरी के गोपुर का आलिङ्गन करता था, वह नगरी अपनी दीप्ति से देवपुरी की हँसी करती थी और द्वारावती उसका नाम था।।२४-२७।। जिन्हें लक्ष्मी कटाक्ष उठा कर देख रही है ऐसे श्रीकृष्ण ने पिता वसुदेव तथा बड़े भाई बलदेव के साथ उस नगरी में प्रवेश किया और यादवों के साथ सुख से रहने लगे।।२८।।

राजा दशरथ द्वारा जिनमंदिर का जीर्णोद्धार

(पद्मपुराण से)

ये भरताद्यैर्नृपतिभिरुद्धाः कारितपूर्वा जिनवरवासाः।
भङ्गमुपेतान् क्वचिदपि रम्यान् सोऽनयदेतानभिनवभावान्[1]।।१७९।।
इन्द्रनुतानां स्वयमपि रम्यान् तीर्थकराणां परमनिवासान्।
रत्नसमूहैः स्फुरदुरुभासः संततपूजामघटयदेषः।।१८०।।

भरतादि राजाओं ने जो पहले जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम मन्दिर बनवाये थे वे यदि कहीं भग्नावस्था को प्राप्त हुए थे तो उन रमणीय मन्दिरों को राजा दशरथ ने मरम्मत कराकर पुनःनवीनता प्राप्त करायी थी।।१७९।। यही नहीं,उसने स्वयं भी ऐसे जिनमन्दिर बनवाये थे जिनकी कि इन्द्र स्वयं स्तुति करता था तथा रत्नों के समूह से जिनकी विशाल कान्ति स्फुरायमान हो रही थी।।१८०।।

१. आदिपुराण भाग-२, पृ. ३२३-३२४।

भरत चक्रवर्ती ने गोपुरद्वारों एवं महाद्वारों पर घंटे बंधवाये, जिनमें जिनबिंब बनवाये

(आदिपुराण से)

निर्मापितास्ततो घण्टा जिनबिम्बैरलंकृताः।
परार्घ्यरत्ननिर्माणाः संबद्धा हेमरज्जुभिः[1]।।८७।।
लम्बिताश्च पुरद्वारि ताश्चतुर्विंशतिप्रमाः।
राजवेश्ममहाद्वारगोपुरेष्वप्यनुक्रमात्।।८८।।
यदा किल विनिर्याति प्रविशत्यप्ययं प्रभुः।
तदा मौल्यग्रलग्नाभिरस्य स्यादर्हतां स्मृतिः।।८९।।
स्मृत्वा ततोऽर्हदर्चानां भक्त्या कृत्वाभिनन्दनाम्।
पूजयत्यभिनिष्क्रामन् प्रविशंश्च स पुण्यधीः।।९०।।
रेजुः सूत्रेषु संप्रोक्ता घण्टास्ताः परमेष्ठिनाम्।
सदर्थघटिताष्टीका ग्रंथानामिव पेशलाः।।९१।।
लोकचूडामणेस्तस्य मौलिलग्ना विरेजिरे।
पादच्छाया जिनस्येव घण्टास्ता लोकसंमताः।।९२।।
रत्नतोरणविन्यासे स्थापितास्ता निधीशिना।
दृष्ट्वार्हद्वन्दनाहेतोर्लोकोऽप्यासीत्तदादरः।।९३।।
पौरैर्जनैरतः स्वेषु वेश्मतोरणदामसु।
यथाविभवमाबद्धा घण्टास्ता सपरिच्छदाः।।९४।।
आदिराजकृतां सृष्टिं प्रजास्तां बहुमेनिरे।
प्रत्यगारं यतोऽद्यापि लक्ष्या वन्दनमालिकाः।।९५।।
वन्दनार्थं कृता माला यतस्ता भरतेशिना।
ततो वन्दनमालाख्यां प्राप्य रूढिं गताः क्षितौ।।९६।।
धर्मशीले महीपाले यान्ति तच्छीलतां प्रजाः।
अताच्छील्यमतच्छीले यथा राजा तथा प्रजाः।।९७।।

तदनन्तर उन्होंने बहुमूल्य रत्नों से बने हुए, सुवर्ण की रस्सियों से बँधे हुए और जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं से सजे हुए बहुत से घण्टे बनवाये तथा ऐसे-ऐसे चौबीस घण्टे

१. आदिपुराण भाग-२ पृ. ३२३-३२४।

बाहर के दरवाजे पर, राजभवन के महाद्वार पर और गोपुर दरवाजों पर अनुक्रम से टँगवा दिये।।८७-८८।। जब वे चक्रवर्ती उन दरवाजों से बाहर निकलते अथवा भीतर प्रवेश करते तब मुकुट के अग्रभाग पर लगे हुए घण्टाओं से उन्हें चौबीस तीर्थंकरों का स्मरण हो आता था। तदनन्तर स्मरण कर उन अरहन्तदेव की प्रतिमाओं को वे नमस्कार करते थे इस प्रकार पुण्यरूप बुद्धि को धारण करने वाले महाराज भरत निकलते और प्रवेश करते समय अरहन्तदेव की पूजा करते थे।।८९-९०।। सूत्र अर्थात् रस्सियों से सम्बन्ध रखने वाले वे परमेष्ठियों के घण्टा ऐसे अच्छे जान पड़ते थे मानो उत्तम-उत्तम अर्थों से भरी हुई और सूत्र अर्थात् आगम वाक्यों से सम्बन्ध रखने वाली ग्रंथों की सुन्दर टीकाएँ ही हों।।९१।। महाराज भरत स्वयं तीनों लोकों के चूड़ामणि थे उनके मस्तक पर लगे हुए वे लोकप्रिय घण्टा ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनेन्द्रदेव के चरणों की छाया ही हो।।९२।। निधियों के स्वामी भरत ने अर्हंतदेव की वन्दना के लिए जो घण्टा रत्नों के तोरणों की रचना में स्थापित किये थे उन्हें देखकर अन्य लोग भी उनका आदर करने लगे थे अर्थात् अपने-अपने दरवाजे के तोरणों की रचना में घण्टा लगवाने लगे थे। उसी समय से नगरवासी लोगों ने भी अपने-अपने घर की तोरणमालाओं में अपने-अपने वैभव के अनुसार जिनप्रतिमा आदि सामग्री से युक्त घण्टा बाँधे थे।।९३-९४।। उस समय प्रथम राजा भरत की बनायी हुई इस सृष्टि को प्रजा के लोगों ने बहुत माना था, यही कारण है कि आज भी प्रत्येक घर पर वन्दन मालाएँ दिखाई देती हैं।।९५।। चूँकि भरतेश्वर ने वे मालाएँ अरहन्तदेव की वन्दना के लिए बनवायी थीं इसलिए ही वे वन्दनमाला नाम पाकर पृथिवी में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई हैं।।९६।। यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है और राजा धर्मात्मा नहीं होता है तो प्रजा भी धर्मात्मा नहीं होती है, यह नियम है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है।।९७।।

अयोध्या में श्री अरनाथ भगवान का मंदिर था

(पद्मपुराण से)

परिध्वस्ताखिलद्वेषं सर्वप्रकृतिसौख्यदम्।
चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः[१]।।१३६।।
राज्ये तथाविधेऽप्यस्य धृतिर्नाभूदपि क्षणम्।
दुस्सहं दधमानस्य शोकशल्यं मनस्विनः।।१३७।।
त्रिकालमरनाथस्य वन्दारुर्भोगमन्दधीः।
ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमस्येयती धृतिः।।१३८।।
तत्राचार्यो द्युतिर्नाम स्वपरागमपारगः।
महता साधुसंघेन सततं कृतसेवनः।।१३९।।
अग्रतोऽवग्रहं तस्य चकार भरतः सुधीः।
पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति।।१४०।।
कृतावग्रहमेवं तमुवाच भगवान् द्युतिः।
कुर्वन् मयूरवृन्दानां नर्तनं धीरया गिरा।।१४१।।
भव्य भो यावदायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणः।
तावद्गृहस्थधर्मेण भवाप्तपरिकर्मकः।।१४२।।

अथानन्तर भरत, पिता के समान, प्रजा पर राज्य करने लगा। उसका राज्य समस्त शत्रुओं से रहित तथा समस्त प्रजा को सुख देने वाला था।।१३६।। तेजस्वी भरत ने अपने मन में असहनीय शोकरूपी शल्य को धारण कर रखा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्य में भी उसे क्षणभर के लिए सन्तोष नहीं होता था।।१३७।। वह तीनों काल अरनाथ भगवान् की वन्दना करता था, भोगों से सदा उदास रहता था और समीचीन धर्म का श्रवण करने के लिए मन्दिर जाता था यही इसका नियम था।।१३८।। वहाँ स्व और परशास्त्रों के पारगामी तथा अनेक मुनियों का संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नाम के आचार्य रहते थे।।१३९।। उनके आगे बुद्धिमान् भरत ने प्रतिज्ञा की कि मैं राम के दर्शन मात्र से मुनिव्रत धारण करूँगा।।१४०।। तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणी से मयूर समूह को नृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने वाले भरत से बोले।।१४१।। कि हे

१. पद्मपुराण पर्व-३२ पृ. ९५ से ९६ तक।

अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम्।
परिकर्म विशुद्धस्य जायते सुखसाधना।।१४३।।
उपरिष्टात् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन्।
अनेको मृत्युमायाति नरोऽतिजडमानसः।।१४४।।
अनर्घ्यरत्नसदृशं तपो दिग्वाससामिति।
एवमप्यक्षमं वक्तुं परस्तस्योपमा कुतः।।१४५।।
कनीयांस्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽयं गृहिणां जिनैः।
अप्रमादी भवेत्तस्मिन्निरतो बोधदायिनि।।१४६।।
यथा रत्नाकरद्वीपं मानवः कश्चिदागतः।
रत्नं यत्किंचिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम्।।१४७।।
तथास्मिन्नियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम्।
य एव नियमः कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम्।।१४८।।

भव्य ! कमल के समान नेत्रों के धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्म के द्वारा अभ्यास कर ले।।१४२।। महात्मा निर्ग्रंथ मुनियों की चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यास के द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है।।१४३।। 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहने वाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं।।१४४।। 'निर्ग्रंथ मुनियों का तप अमूल्य रत्न के समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो हो ही क्या सकती है ?।।१४५।। गृहस्थों के धर्म को जिनेन्द्र भगवान् ने मुनिधर्म का छोटा भाई कहा है सो बोधि को प्रदान करने वाले इस धर्म में भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिए।।१४६।। जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्न को उठाता है वही उसके लिए अमूल्यता को प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्र की प्रवृत्ति करने वाले जिनेन्द्र भगवान् के शासन में जो कोई इस नियमरूपी द्वीप में आकर जिस किसी नियम को ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है।।१४७-१४८।।

अयोध्या नगरी में श्री मुनिसुव्रतनाथ का मंदिर था

(पद्मपुराण से)

एक दिन ये सातों ही महाऋषिराज जूड़ाप्रमाण (चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखते हुए अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए। वे विधिपूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठ के घर के दरवाजे पर पहुँचे। उन मुनियों को देखकर अर्हद्दत्त सेठ विचार करने लगा—

"यह वर्षाकाल कहाँ ? और इन मुनियों की यह चर्या कहाँ ? इस नगरी के आस-पास पर्वत की कंदराओं में, नदी के तट पर, वृक्ष के नीचे, शून्य घर में, जिनमंदिर में तथा अन्य स्थानों में जहाँ कहीं जो भी मुनिराज स्थित हैं वे सब वर्षायोग पूरा किये बिना इधर-उधर नहीं जाते हैं। परन्तु ये मुनि आगम के विपरीत चर्या वाले हैं, ज्ञान से रहित और आचार्यों से रहित हैं। इसलिए ये इस समय यहाँ आ गये हैं। यद्यपि ये मुनि असमय में आये थे फिर भी अर्हद्दत्त के अभिप्राय को समझने वाली वधू ने उनका पड़गाहन करके उन्हें आहारदान दिया।

आहार के बाद ये सातों मुनि तीन लोक को आनंदित करने वाले ऐसे जिनमंदिर में पहुँचे जहाँ **भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान थी** और शुद्ध निर्दोष प्रवृत्ति करने वाले दिगम्बर साधुगण भी विराजमान थे।

ये सातों मुनिराज पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चल रहे थे। ऐसे इन मुनियों को वहाँ पर स्थित द्युति भट्टारक—द्युति नाम के आचार्य देव ने देखा। इन मुनियों ने उत्तम श्रद्धा से पैदल चलकर ही जिनमंदिर में प्रवेश किया तब द्युति भट्टारक ने खड़े होकर नमस्कार कर विधि से उनकी पूजा की।

"यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वंदना करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।"

ऐसा सोचकर उन द्युति आचार्य के शिष्यों ने उन सप्तर्षियों की निंदा का विचार किया। तदनंतर सम्यक् प्रकार से स्तुति करने में तत्पर वे सप्तर्षि मुनिराज जिनेन्द्र भगवान् की वंदना कर आकाशमार्ग से पुनः अपने स्थान पर चले गये। जब वे आकाश में उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धि के धारक जानकर द्युति आचार्य के शिष्य जो अन्य मुनि थे उन्होंने अपनी निंदा गर्हा आदि करके प्रायश्चित कर अपनी कलुषता दूर कर अपना हृदय निर्मल कर लिया।

गृहचैत्यालय एवं सप्तर्षि प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा

(पद्मपुराण से)

हे शत्रुघ्न! इस नगरी की चारों दिशाओं में सप्तर्षियों की प्रतिमाएं स्थापित करो, उसी से सब प्रकार की शांति होगी। आज से लेकर जिस घर में जिनप्रतिमा नहीं होगी उस घर को मारी उसी तरह खा जायेगी कि जिस तरह व्याघ्री अनाथ मृग को खा जाती है।[१] जिसके घर में अंगूठा प्रमाण भी जिनप्रतिमा होगी उसके घर में गरुड़ से डरी हुई सर्पिणी के समान मारी का प्रवेश नहीं होगा।"

महामुनि के इस उपदेश को सुनकर हर्ष से युक्त हो राजा शत्रुघ्न ने कहा—

"आपने जैसी आज्ञा दी है वैसा ही हम लोग करेंगे" इत्यादि। इसके बाद वे महामना सातों मुनि आकाश में उड़कर विहार कर गये। वे सप्तर्षि निर्वाण क्षेत्रों की वंदना करके अयोध्या में सीता के घर उतरे। अत्यधिक हर्ष को धारण करने वाली एवं श्रद्धा आदि गुणों से सुशोभित सीता ने उन्हें विधिपूर्वक उत्तम आहार दिया। जानकी के नवधाभक्ति से दिये गये सर्वगुणसम्पन्न आहार को ग्रहण कर उसे शुभाशीर्वाद देकर वे मुनि आकाश मार्ग से चले गये।

अनन्तर शत्रुघ्न ने नगर के भीतर और बाहर सर्वत्र जिनेंद्र भगवान की प्रतिमाएं विराजमान करायीं तथा ईतियों को दूर करने वाली सप्तर्षियों की प्रतिमाएं भी चारों दिशाओं में विराजमान करायीं। उस समय वहाँ पर सर्वप्रकार से सुभिक्ष, क्षेम और शांति का साम्राज्य हो गया। तब राजा शत्रुघ्न निर्विघ्नरूप से राज्य का संचालन करते हुए और प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए सुखपूर्वक मथुरा नगरी में रहने लगे।

---

१. सप्तर्षि प्रतिमा दिक्षु चतसृष्वपि यत्नतः।
नगर्यां कुरू शत्रुघ्न! तेन शांतिर्भविष्यति।।७४।।
अद्यप्रभृति यद्गेहे जैनं बिबं न विद्यते।
मारी भक्ष्यति यद्व्याघ्री यथाऽनाथं कुरंगकं।। ७५।। (पद्मपुराण, पर्व ९२)

धरणेन्द्र देव ने संजयंत मुनि की प्रतिमा बनवाई

(उत्तरपुराण से)

जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के उत्तर तट पर एक गन्धमालिनी नाम का देश है। उसके वीतशोक नगर में वैजयन्त राजा राज्य करता था। उसकी सर्वश्री नाम की रानी थी और उन दोनों के संजयन्त तथा जयन्त नाम के दो पुत्र थे, ये दोनों ही पुत्र राजपुत्रों के गुणों से सहित थे।।१०९-११०।। किसी दूसरे दिन अशोक वन में स्वयंभू नामक तीर्थंकर पधारे। उनके समीप जाकर दोनों भाइयों ने धर्म का स्वरूप सुना और दोनों ही भोगों से विरक्त हो गये।।१११।। उन्होंने संजयन्त के पुत्र वैजयन्त के लिए जो कि अतिशय बुद्धिमान् था राज्य देकर पिता के साथ संयम धारण कर लिया।।११२।। संयम के सातवें स्थान अर्थात् बारहवें गुणस्थान में समस्त कषायों का क्षय कर जिन्होंने समरसपना—पूर्ण वीतरागता प्राप्त कर ली है ऐसे वैजयन्त मुनिराज जिनराज अवस्था को प्राप्त हुए।।११३।। पिता के केवलज्ञान का उत्सव मनाने के लिए सब देव आये तथा धरणेन्द्र भी आया। धरणेन्द्र के सौन्दर्य और बहुत भारी ऐश्वर्य को देखकर जयन्त मुनि ने धरणेन्द्र होने का निदान किया। उस निदान के प्रवाह से वह दुर्बुद्धि मर कर धरणेन्द्र हुआ सो ठीक ही है, क्योंकि बहुत मूल्य से अल्प मूल्य की वस्तु खरीदना दुर्लभ नहीं है।।११४-११५।। किसी एक दिन संजयन्त मुनि, मनोहर नगर के समीपवर्ती भीम नामक वन में प्रतिमा योग धारण कर विराजमान थे।।११६।। वहीं से विद्युद्दंष्ट्र नाम का विद्याधर निकला। वह पूर्वभव के वैर के स्मरण से उत्पन्न हुए तीव्र वेग से युक्त क्रोध से आगे बढ़ने के लिए असमर्थ हो गया।। वह दुष्ट उन मुनिराज को उठा लाया तथा भरतक्षेत्र के इला नामक पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर जहाँ कुसुमवती, हरवती, सुवर्णवती, गजवती और चण्डवेगा इन नदियों का समागम होता है वहाँ उन नदियों के अगाध जल में छोड़ आया।।११७-११९।। इतना ही नहीं उसने भोले-भाले विद्याधरों को निम्नांकित शब्द कहकर उत्तेजित भी किया। वह कहने लगा कि यह कोई बड़े शरीर का धारक, मनुष्यों को खाने वाला पापी राक्षस है, यह हम सबको अलग-अलग देखकर खाने के लिए चुपचाप खड़ा है, इस निर्दय, सर्वभक्षी तथा सर्वद्वेषी दैत्य को हम लोग मिलकर बाण तथा भाले आदि शस्त्रों के समूह से मारें, देखों, यह भूखा है, भूख से इसका पेट झुका जा रहा है, यदि इसकी उपेक्षा की गई तो यह देखते-देखते आज रात्रि को ही स्त्रियों-बच्चों तथा पशुओं को खा जावेगा। इसलिए आप लोग मेरे वचनों पर

१. उत्तरपुराण पृ. १०६-१०७, ११८-११९।

विश्वास करो, मैं वृथा ही झूठ क्यों बोलूँगा ? क्या इसके साथ मेरा द्वेष है ? इस प्रकार उसके द्वारा प्रेरित हुए सब विद्याधर मृत्यु से डर गये और जिस प्रकार किसी विश्वासपात्र मनुष्य को ठग लोग मारने लगते हैं उस प्रकार शस्त्रों-का समूह लेकर साधुशिरोमणि एवं समाधि में स्थित उन संजयन्त मुनिराज को वे विद्याधर सब ओर से मारने लगे।।१२०-१२५।। संजयन्त मुनिराज भी इस समस्त उपसर्ग को सह गये, उनका शरीर वज्र के समान सुदृढ़ था, वे पर्वत के समान निश्चल खड़े रहे और शुक्लध्यान के प्रभाव से निर्मल ज्ञान के धारी मोक्ष को प्राप्त हो गये।।१२६।। उसी समय चारों निकाय के इन्द्र उनकी भक्ति से प्रेरित होकर निर्वाण-कल्याणक की पूजा करने के लिए आये।।१२७।। सब देवों के साथ पूर्वोक्त धरणेन्द्र भी आया था, अपने बड़े भाई का शरीर देखने से उसे अवधिज्ञान प्रकट हो गया जिससे वह बड़ा कुपित हुआ। उसने उन समस्त विद्याधरों को नागपाश से बाँध लिया।।१२८।। उन विद्याधरों में कोई-कोई बुद्धिमान् भी थे अतः उन्होंने प्रार्थना की कि हे देव ! इस कार्य में हम लोगों का दोष नहीं है, पापी विद्युद्दंष्ट्र इन्हें विदेह क्षेत्र से उठा लाया और विद्याधरों को इसने बतलाया कि इनसे तुम सबको बहुत भय है। ऐसा कहकर इसी दुष्ट ने हम सब लोगों से व्यर्थ ही यह महान् उपसर्ग करवाया।।१२९-१३०।। विद्याधरों की प्रार्थना सुनकर धरणेन्द्र ने उन पर क्रोध छोड़ दिया और परिवार सहित विद्युद्दंष्ट्र को समुद्र में गिराने का उद्यम किया।।१३१।। उसी समय वहाँ एक आदित्याभ नाम का देव आया था जो कि विद्युद्दंष्ट्र और धरणेन्द्र दोनों के ही गुण-लाभ का उस प्रकार हेतु हुआ था जिस प्रकार कि किसी धातु और प्रत्यय के बीच में आया हुआ अनुबन्ध गुण—व्याकरण में प्रसिद्ध संज्ञा विशेष का हेतु होता हो।।१३२।। वह कहने लगा कि हे नागराज ! यद्यपि इस विद्युद्दंष्ट्र ने अपराध किया है तथापि मेरे अनुरोध से इस पर क्षमा कीजिये। आप जैसे महापुरुषों का इस क्षुद्र पशु पर क्रोध कैसा ?।।१३३।।

इसने पूर्व वैर के संस्कार से कर्मबंध कर चिरकाल तक दुःख पाये और आगे भी पावेगा।।२९०-२९१।। इस प्रकार कर्म के वश होकर यह जीव परिवर्तन करता रहता है। पिता पुत्र हो जाता है, पुत्र माता हो जाता है, माता भाई हो जाती है, भाई बहन हो जाता है और बहन नाती हो जाती है सो ठीक ही है क्योंकि इस संसार में बन्धुजनों के सम्बन्ध की स्थिरता ही क्या है ? इस संसार में किसने किसका अपकार नहीं किया और किसने किसका उपकार नहीं किया ? इसलिए वैर बाँधकर पाप का बन्ध मत करो। हे नागराज-हे धरणेन्द्र ! वैर छोड़ों और विद्युद्दंष्ट्र को भी छोड़ दो।।२९२-२९४।। इस

प्रकार उस देव के वचनरूप अमृत की वर्षा से धरणेन्द्र बहुत ही संतुष्ट हुआ। वह कहने लगा कि हे देव ! तुम्हारे प्रसाद से आज मैं समीचीन धर्म का श्रद्धान करता हूँ।।२९५।। किन्तु इस विद्युद्दंष्ट्र ने जो यह पाप का आचरण किया है वह विद्या के बल से ही किया है इसलिए मैं इसकी तथा इसके वंश की महाविद्या को छीन लेता हूँ ? यह कहा।।२९६।। उसके वचन सुनकर वह देव धरणेन्द्र से फिर कहने लगा कि आपको स्वयं नहीं तो मेरे अनुरोध से ही ऐसा नहीं करना चाहिये।।२९७।।

सोऽपि यद्येवमेतस्य वंशानां मासिधन् महा-।
विद्याः पुंसां स्त्रियः सञ्जयन्तभट्टारकान्तिके।।२९८।।

साधयन्त्वन्यथा दर्पादिमे दुष्टाः कुचेष्टिताः।
भविष्यतां च साधूनां पापाः कुर्वन्त्युपद्रवम्।।२९९।।

एषोऽपि पर्वतो विद्याधरह्रीक्रीडितः परः।
ह्रीमन्नामेत्युदीर्यास्मिन् भ्रातृप्रतिनिधिं व्यधात्।।३००।।

विद्युद्दंष्ट्रं च सामोक्तैर्धर्मन्यायानुयायिभिः।
कृत्वा प्रशान्तकालुष्यं देवं चाभ्यर्च्य यातवान्।।३०१।।

धरणेन्द्र ने भी उस देव के वचन सुनकर कहा कि यदि ऐसा है तो इसके वंश के पुरुषों को महाविद्याएँ सिद्ध नहीं होंगी परन्तु इस वंश की स्त्रियाँ संजयन्त स्वामी के समीप महाविद्याओं को सिद्ध कर सकती हैं। यदि इन अपराधियों को इतना भी दण्ड नहीं दिया जावेगा तो ये दुष्ट अहंकार से खोटी चेष्टाएँ करने लगेंगे तथा आगे होने वाले मुनियों पर भी ऐसा उपद्रव करेंगे।।।२९८-२९९।। इस घटना से इस पर्वत पर के विद्याधर अत्यन्त लज्जित हुए थे इसलिए इसका नाम 'ह्रीमान्' पर्वत है ऐसा कहकर उसने उस पर्वत पर अपने भाई संजयन्त मुनि की प्रतिमा बनवाई।।३००।। धर्म और न्याय के अनुसार कहे हुए शान्त वचनों से विद्युद्दंष्ट्र को कालुष्य रहित किया और धरणेन्द्र उस देव की पूजा कर अपने स्थान पर चला गया।।३०१।।

जिनेन्द्र देव के दर्शन का फल

(पद्मपुराण से)

फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य षष्ठस्योद्यानमात्रतः।
अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु[1]।।१७८।।

द्वादशस्य ततः किंचिन्मध्ये पक्षोपवासजम्।
फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात्।।१७९।।

चैत्याङ्गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम्।
फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते।।१८०।।

फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु।
दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम्।।१८१।।

अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः।
नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम्।।१८२।।

कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं भरत गच्छति।
क्षीणकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपमं सुखम्।।१८३।।

जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिन्तवन करता है वह वेला का, जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह तेला का, जो जाने का आरम्भ करता है वह चौला का, जो जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवास का, जो मन्दिर के दर्शन करता है वह मासोपवास का, जो मन्दिर के आँगन में प्रवेश करता है वह छह मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्षोपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनन्त उपवास के फल को प्राप्त करता है। यथार्थ में जिनभक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है।।१७८-१८२।। आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेव की भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते, वह अनुपम सुख से सम्पन्न परम पद को प्राप्त होता है।।१८३।।

१. पद्मपुराण पर्व-३२, श्लोक-१७८ से १८३ तक।

जिनमंदिर एवं प्रतिमा निर्माण का फल

(पद्मपुराण से)

भवनं वस्तु जैनेन्द्रं निर्मापयति मानवः।
तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः[१]।।१७२।।

प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ।
सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम्।।१७३।।

व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः।
सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये।।१७४।।

एकस्मादपि जैनेन्द्रबिम्बाद् भावेन कारितात्।
यत्पुण्यं जायते तस्य न संमान्त्यतिमात्रतः।।१७५।।

फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गे संप्राप्य जन्तवः।
चक्रवर्त्यादितां लब्ध्वा यन्मर्त्यत्वेऽपि भुञ्जते।।१७६।।

धर्ममेवं विधानेन यः कश्चित्प्राप्य मानवः।
संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्रेऽवतिष्ठते।।१७७।।

जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेता के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है?।।१७२।। जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परम पद को प्राप्त होता है।।१७३।। तीनों कालों और तीनो लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य–कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते।।१७४–१७५।। इस कहे हुए फल को जीव स्वर्ग में प्राप्त कर जब मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदि का पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं।।१७६।। जो कोई मनुष्य इस विधि से धर्म का सेवन करता है वह संसार–सागर से पार होकर तीन लोक के शिखर पर विराजमान होता है।।१७७।।

१. पद्मपुराण पर्व-३२ पृ. ९८।

जिनमंदिर व प्रतिमा बनवाने की महिमा

(वसुनन्दिश्रावकाचार से)

श्री वसुनन्दि आचार्य ने वसुनन्दि श्रावकाचार में जिनमंदिर व जिनप्रतिमा बनवाने की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है—

कुत्थुंभरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं।
सरिसवमेत्तं पिलहेइ सो णरो तित्थयरपुण्णं[१]।।४८१।।

जो पुण जिणिंदभवणं समुण्णयं परिहि-तोरणसमग्गं।
णिम्मावइ तस्स फलं को सक्कइ वण्णिउं सयलं।।४८२।।

अर्थ—जो मनुष्य कुंथुम्भरी (धनिया) के दलमात्र अर्थात् पत्र बराबर जिनभवन बनवाकर उसमें सरसों के बराबर भी जिनप्रतिमा को स्थापन करता है, वह तीर्थंकर पद पाने के योग्य पुण्य को प्राप्त करता है, तब जो कोई अति उन्नत और परिधि, तोरण आदि से संयुक्त जिनेन्द्र भवन बनवाता है, उसका समस्त फल वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ?

जिनमंदिर व प्रतिमा बनवाने की महिमा

(पद्मपुराण से)

श्री रविषेणाचार्य ने पद्मपुराण में जिनमंदिर व जिनप्रतिमा बनवाने की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है—

भवनं वस्तु जैनेन्द्रं निर्मापयति मानवः।
तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः[२]।।१७२।।

प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ।
सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम्।।१७३।।

व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः।
सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये।।१७४।।

एकस्मादपि जैनेन्द्रबिम्बाद् भावेन कारितात्।
यत्पुण्यं जायते तस्य न संमान्त्यतिमात्रतः।।१७५।।

जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेता के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है ?।।१७२।। जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर

१. वसुनन्दि श्रावकाचार श्लोक-४८१, ४८२। २. पद्मपुराण पर्व-३२, श्लोक १७२ से १७५ तक।

तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परम पद को प्राप्त होता है।।१७३।। तीनों कालों और तीनो लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य–कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते।।१७४–१७५।।

जिनेन्द्रदेव के दर्शन का फल

(धवला पुस्तक-६ से)

श्री वीरसेनाचार्य ने धवला पु. ६ में जिनेन्द्रदेव के दर्शन का फल बताते हुए लिखा है —

तिर्यंचों में एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनके सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है तथा सम्मूर्च्छन तिर्यंचों के भी प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता नहीं है। अतः गर्भ से जन्म लेने वाले पर्याप्तक, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही इस सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं।

वे बहुत से दिवस पृथक्त्व के व्यतीत हो जाने पर तीन कारणों से सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। कितने ही जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही जिनबिम्बों के दर्शन करके।

कधं जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ? जिणबिम्बदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो।

शंका — जिनबिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण किस प्रकार से है ?

समाधान — जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचितरूप भी मिथ्यात्व आदि कर्मसमूह का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है।[१]

कहा भी है—

''दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा।।[२]''

जिनेन्द्रों के दर्शन से पापसंघातरूपी कुंजर के सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार कि वज्र के आघात से पर्वत के सौ टुकड़े हो जाते हैं।

१. धवला पु. ६ पृ. ४२७। २. धवला पु. ६ पृ. ४२७।

मनुष्यों में गर्भज पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि मनुष्य ही इस प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करते हैं, सम्मूर्च्छन और अपर्याप्तक नहीं। ये मनुष्य आठ वर्ष की उम्र से लेकर किसी भी काल में तीन कारणों से सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकते हैं, उसके नीचे के काल में नहीं।

कितने ही मनुष्य जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर और कितने ही जिनबिम्ब के दर्शन करके सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

शंका — जिनमहिमा को देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं। इसलिए चार कारण कहना चाहिए ?

समाधान — जिनमहिमादर्शन का जिनबिम्बदर्शन में अंतर्भाव हो जाता है अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के आकाश में गमन करने की शक्ति न होने से उनके चतुर्विध देवनिकायों के द्वारा किये जाने वाले नंदीश्वरद्वीपवर्ती जिनेन्द्र प्रतिमाओं के महामहोत्सवों का देखना सम्भव नहीं है, इसलिए उनके जिनमहिमादर्शनरूप कारण का अभाव है। किन्तु मेरुपर्वत पर किये जाने वाले जिनेन्द्र महोत्सवों को विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं, इसलिये उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिए, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। अतएव पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य है।

लद्धिसंपण्णरिसिदंसणं पि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे ? ण, एदस्सं वि जिणबिम्बदंसणे अंतब्भावादो। उज्जयंतचंपा–पावाणयरादि दंसणं पि एदेणेव घेत्तव्वं। कुदो ? तत्थतणजिणबिम्बदंसणजिणणिव्वुइगमणकहणेहि विणा पढमसम्मत्तगहणाभावा। णइसग्गियमवि पढमसम्मत्तं तच्चट्ठे उत्तं, तं हि एत्थेव दट्ठव्वं, जाइस्सरण–जिणबिम्बदंसणेहि विणा उप्पज्जमाण–णइसग्गियपढमसम्मत्तस्स।

शंका — लब्धिसम्पन्न ऋषियों का दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण होता है, पुनः इस कारण को यहाँ पृथक्रूप से क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि लब्धिसंपन्न ऋषियों के दर्शन का भी जिनबिम्ब दर्शन में ही अंतर्भाव हो जाता है।

ऊर्जयंत पर्वत तथा चंपापुर व पावापुर आदि के दर्शन को भी जिनबिम्ब दर्शन के भीतर ही ग्रहण कर लेना चाहिये। क्यों ? क्योंकि उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बों के दर्शन तथा जिन भगवान के मोक्षगमन के कथन के बिना प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता।

जिनप्रतिमा का लक्षण

(यक्ष-यक्षी समेत)

(प्रतिष्ठा ग्रंथों में)

शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारकृत।
सम्पूर्णभावरूपानुविद्धांगं लक्षणान्वितम्।।
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तप्रातिहार्या - कयक्षयुक्।
निर्माप्य विधिना पीठे जिनबिम्बं निवेशयेत्[१]।।

अर्थ— जिसके मुख की आकृति शांत हो, प्रसन्न हो, मध्यस्थ हो, नेत्र विकाररहित हो, दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर हो, जो केवलज्ञान के सम्पूर्ण भावों से सुशोभित हो, जिसके अंग उपांग सब सुन्दर हों, रौद्र आदि भावों से रहित हों, आठों प्रातिहार्यों से विभूषित हों, चिन्ह से सुशोभित हों, यक्ष-यक्षी सहित हों और ध्यानस्थ हों, इस प्रकार के शुभ लक्षणों से सुशोभित जिनप्रतिमा बनवाना चाहिए और प्रतिष्ठा कराकर पूजा करनी चाहिए। जिस प्रतिमा में ये लक्षण न हों, वह अरहन्त की प्रतिमा नहीं कही जा सकती।

प्रातिहार्याष्टकोपेतां यक्षयक्षीसमन्विताम्।
स्वस्वलांच्छनसंयुक्तां जिनार्चां कारयेत्सुधीः।।[२]

अर्थ— जो आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित है, यक्ष-यक्षी सहित है और अपने-अपने चिन्हों से सुशोभित है, ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानों को बनवानी चाहिए।

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवताम्।
लाञ्छनं पादपीठाधः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत्।।[३]

अर्थ— जिनप्रतिमा के दाईं ओर यक्ष की मूर्ति होनी चाहिए, बाईं ओर शासन देवता अर्थात् यक्षी की मूर्ति होनी चाहिए और सिंहासन के नीचे जिनकी प्रतिमा हो, उनका चिन्ह होना चहिए।

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णके।
पीठं भामण्डलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम्।।
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्थायौ यथायथम्।
लांच्छनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षो यक्षी च वामके।।[४]

अर्थ— अरहन्त प्रतिमा के निर्माण के साथ-साथ तीन छत्र, अशोक वृक्ष, सिंहासन,

१. प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय १ पृ० ७। २. जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय।
३. वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ। ४. प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय १ पृ. ९।

भामण्डल, चमर, दिव्यध्वनि, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य अंकित होने चाहिए। प्रतिमा चाहे चल हों, चाहे अचल हों परन्तु उनका चिन्ह सिंहासन के नीचे होना चाहिए।

अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
कृत्वायतनसंस्थानं तरुणांगं दिगम्बरम्।।
मूलप्रमाणपर्वाणां कुर्यादष्टोत्तरं शतम्।
अङ्गोपांगविभागश्च जिनबिम्बानुसारतः।।
प्रातिहार्याष्टकोपेतं सम्पूर्णावयवं शुभम्।
भावरूपानुविद्धांगं कारयेद्बिम्बमर्हतः।।
प्रातिहार्यं बिना शुद्धं सिद्धं बिम्बमपीदृशम्।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमम्।।

अर्थ— भगवान जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा लक्षण सहित बनवानी चाहिए। जो समचतुरस्र संस्थान हो, तरुणावस्था की हो, दिगम्बर हो, उसका आकार वास्तुशास्त्र के अनुसार दशताल प्रमाण हो, उसके आकार के एक सौ आठ भाग हों, अंग-उपांगों का विभाग प्रतिमा के अनुसार ही होना चाहिए। जो आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हो, जिसके सम्पूर्ण अवयव हों, जो शुभ हो, उसका शरीर केवलज्ञान को प्रकाशित करने वाले भावों से परिपूर्ण हो, इस प्रकार अरहन्त की प्रतिमा बनवानी चाहिए। यदि उस प्रतिमा के साथ आठ प्रातिहार्य न हों, तो वह सिद्धों की प्रतिमा हो जाती है। आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की प्रतिमा भी आगम के अनुसार बनवानी चाहिए।

कारयेदर्हतो बिम्बं प्रातिहार्यसमन्वितम्।
यक्षाणां देवतानां च सर्वालंकारभूषितम्।।
स्ववाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्वांगसुन्दरम्।

अर्थ— जिनप्रतिमा आठ प्रातिहार्य सहित होनी चाहिए तथा यक्ष-यक्षी सहित होनी चाहिए। वे यक्ष और यक्षी समस्त अलंकारों से सुशोभित होने चाहिए, अपने-अपने आयुध और वाहन सहित हों तथा सर्वांग सुन्दर हो।

सैद्धं नु प्रातिहार्यांकयक्षयुग्मोज्झितं शुभम्।

अर्थ— जिस प्रतिमा में आठ प्रातिहार्य न हों और यक्ष-यक्षी न हों, उनको सिद्ध प्रतिमा कहते हैं।

अष्टप्रातिहार्यसमन्वितार्हत्प्रतिमा तद्रहिता सिद्धप्रतिमा।

अर्थ— जिस प्रतिमा में आठ प्रातिहार्य हो, वह अरहन्त की प्रतिमा है तथा जिसमें प्रातिहार्य नहीं है वह सिद्ध प्रतिमा है।

प्रतिष्ठा के समस्त ग्रंथों में अरहन्त प्रतिमा का यही स्वरूप बतलाया है। त्रिलोकसार, राजवार्तिक में भी प्रतिमा का यही स्वरूप है। यथा—

सिंहासणादिसहिया विणीयलकुन्तल-सुवज्जमयदंता।
विद्दुम अहरा किसलयसोहायर हत्थपायतला[1]।।९८५।।
सिरि देवी सुअदेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणिय जिणपासे मंगलमट्ठविह मवि होई।।९८८।।

अर्थ—जिनप्रतिमा के निकट इन चारित्र का प्रतिबिम्ब होई है। यहाँ पर प्रश्न—जो श्रीदेवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी है। इनका प्रतिबिम्ब कैसे होई है। ताका-समाधान—श्री और सरस्वती ये दोऊ लोक में उत्कृष्ट हैं तातें इनका देवांगना का आकार रूप प्रतिबिम्ब होई है। बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं तातें तिनके आकार हो हैं। आठ मंगल द्रव्य हों।

शासन देव-देवी के प्रमाण

(तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथों से)

गोवदणमहाजक्खा तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ।
मादंगविजयअजिओ बम्हो बम्हेसरो य कोमारो।।९३४।।
छम्मुहओ पादालो किण्णरकिंपुरुसगरुडगंधव्वा।
तह य कुबेरो वरुणो भिउडीगोमेधपासमातंगा।।९३५।।
गुज्झकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसहपहुदीणं।
तित्थयराणं पासे चेट्ठंते भत्तिसंजुत्ता।।९३६।।
जक्खीओ चक्केसरिरोहिणिपण्णत्तिवज्जसिंखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य।।९३७।।
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली।
गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी।।९३८।।
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य।
बहुरूपिणिकुंभंडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति[2]।।९३९।।

गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरव, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध,

१. त्रिलोकसार पृ. ७ गाथा ९८५, ९८८। २. तिलोयपण्णत्ति पृ. २६६-३६७।

पार्श्व, मातंग और गुह्यक, इस प्रकार ये भक्ति से संयुक्त चौबीस यक्ष ऋषभादिक तीर्थंकरों के पास में स्थित रहते हैं।।९३४-९३६।।

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, सोलसा, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कूष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी, ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरों के समीप में रहा करती हैं।।९३७-९३९।।

चमरकरणागजक्खगबत्तीसंमिहुणगेहि पुह जुत्ता।
सरिसीए पंतीए गब्भगिहे सुट्ठु सोहंति।।९८७।।
सिरिदेवी सुददेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणि य जिणपासे मंगलमट्ठविहमवि होदि[1]।।९८८।।

चमर। चमरकरनागयक्षगतद्वात्रिंशन्मिथुनैः पृथक् पृथक् गर्भगृहे सदृश्या पंक्त्या युक्ताः सुष्ठु शोभन्ते।।९८७।।

सिरि। तज्जिनप्रतिमापार्श्वे श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्नसनत्कुमारयक्षाणां रूपाणि अष्टविधानि मङ्गलानि च भवन्ति।।९८८।।

गाथार्थ—वे जिनप्रतिमाएँ, चमरधारी नागकुमारों के बत्तीस युगलों और यक्षों के बत्तीस युगलों सहित, पृथक्-पृथक् एक-एक गर्भगृह में सदृश पंक्ति से भली प्रकार शोभायमान होती हैं। उन जिनप्रतिमाओं के पार्श्वभाग में श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाह्न यक्ष और सानत्कुमार यक्ष के रूप अर्थात् प्रतिमाएँ हैं तथा अष्टमंगल द्रव्य भी होते हैं। झारी, कलश, दर्पण, पङ्खा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोना ये आठ मंगल द्रव्य हैं। ये प्रत्येक मंगल द्रव्य १०८-१०८ प्रमाण होते हैं।।९८७-९८८-९८९।।

इसी प्रकार तिलोयपण्णत्ती में भी कहा है—

सिरिसुददेवीणतहासव्वाण्हसणक्कुमार जक्खाणं।
रूवाणिं पत्तेक्कं पडि वररयणइरइदाणिं[2]।।१८८१।।

अर्थ—प्रत्येक प्रतिमा के प्रति उत्तम रत्नादिकों से रचित श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाह्न व सानत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ रहती हैं।।१८८१।।

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवता शांतिहेतवे।
क्रूरास्तु देवताः हेया येषां स्याद्वृत्तिरामिषैः[3]।।

१. त्रिलोकसार पृ. ७५३, ७५४। २. तिलोयपण्णत्ति चतुर्थअधिकार-पृ. ३८७।
३. उमास्वामी श्रावकाचार-पृ. २९ पर मंत्र प्रदीप के श्लोक

अर्थ—जिनागम में विश्वेश्वर, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि देवता शान्ति के लिए बतलाये हैं परन्तु जिन पर बलि चढ़ाई जाती है, जीव मारकर चढ़ाये जाते हैं, ऐसे चण्डी-मुण्डी आदि देवता त्याग करने योग्य हैं। इसका भी खुलासा इस प्रकार है—

मिथ्यात्वपूरिताः क्रूराः सशस्त्राः सपरिग्रहाः।
निंद्या आमिषवृत्तित्वा-न्मद्यपानाच्च हीनकाः[1]।।१।।

कुदेवाश्च ताज्ञेया ब्रह्मोमाविष्णुकादयः।
प्रतिपत्तिश्च तासां हि मिथ्यात्वस्य च कारणम्।।२।।

तस्माद्धेयाः कुदेवास्ते मिथ्याभेषधरावहाः।
ग्राह्याः सम्यक्त्व सम्पन्ना जिनधर्मप्रभावकाः।।३।।

चक्रेश्वर्यादिदिक्पाला यक्षाश्च शांतिहेतवे।
सम्यग्दर्शनयुक्तत्वात्ते पूज्या जिनशासने।।४।।

नाप्यस्ति मूढता तत्र दृगादिपूजने यतः।

अर्थ—जो देव मिथ्यात्वी, क्रूर, हिंसक हैं, शस्त्र, परिग्रह सहित हैं, मांस की वृत्ति और मद्य की वृत्ति होने से निंद्य और हीन हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, उमा, चण्डी, मुण्डी आदि देवता कुदेवता कहाते हैं। उनकी पूजा करना मिथ्यात्व का कारण है इसलिए मिथ्या भेष को धारण करने वाले ऐसे कुदेव त्याज्य हैं परन्तु जो देव सम्यग्दृष्टि हैं, जो जिनधर्म की प्रभावना करने वाले हैं, ऐसे चक्रेश्वरी, दिक्पाल, यक्ष आदि देवता शान्ति प्रदान करने वाले हैं। ऐसे देव सम्यग्दृष्टी होने के कारण पूज्य हैं, ऐसा जैन शास्त्रों का आदेश है, उनकी पूजा करने में देवमूढ़ता नहीं होती क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव सदा पूज्य होता है।

पूजा के प्रकरण में प्रमाण

(१६ अभिषेक पाठ संग्रह एवं प्रतिष्ठातिलक आदि से)

श्री पूज्यपाद आचार्यदेव ने अपने 'अभिषेक पाठ' के अन्त में जो यक्ष-यक्षी आदि के अर्घ्य चढ़ाने के लिए कहा है, उसका पूरा क्रम और विधि 'प्रतिष्ठातिलक' ग्रंथ में उपलब्ध है।

पूजा प्रारंभ विधि में जो क्रिया है वह सब श्री पूज्यपादस्वामी के अभिषेक पाठ के प्रारंभिक श्लोकों के अनुसार ही है सो देखिये—

१. उमास्वामी श्रावकाचार-पृ. २९ पर मंत्र प्रदीप के श्लोक

आनम्यार्हंतमादावहमपि विहितस्नानशुद्धिः पवित्रैः।
तोयैः सन्मंत्रयंत्रैर्जिनपतिसवनाम्भोभिरप्यात्तशुद्धिः।।
आचम्यार्घ्यं च कृत्वा शुचिधवलदुकूलान्तरीयोत्तरीयः।
श्रीचैत्यावासमानौम्यवनतिविधिना त्रिःपरीत्य क्रमेण।।१।।

द्वारं चोद्घाट्य वक्त्राम्बरमपि विधिनेर्यापथाख्यां च शुद्धिं।
कृत्वाहं सिद्धभक्तिं बुधनुतसकलीसत्क्रियां चादरेण।।
श्री जैनेन्द्रार्चनार्थं क्षितिमपि यजनद्रव्यपात्रात्मशुद्धिं।
कृत्वा भक्त्या त्रिशुद्ध्या महमहमधुना प्रारभेयं जिनस्य[1]।।२।।

"पूजा अभिषेक के प्रारंभ में स्नान करके शुद्ध हुआ मैं अर्हंत देव को नमस्कार करके पवित्र जलस्नान से, मंत्रस्नान से और व्रतस्नान से शुद्ध होकर आचमन कर, अर्घ्य देकर, धुले हुए सफेद धोती और दुपट्टे को धारण कर, वंदना विधि के अनुसार तीन प्रदक्षिणा देकर जिनालय को नमस्कार करता हूँ।

तथा द्वारोद्घाटन कर और मुख वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक ईर्यापथ शुद्धि करके, सिद्धभक्ति करके, सकलीकरण करके, जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिए भूमिशुद्धि, पूजा द्रव्य की शुद्धि, पूजा पात्रों की शुद्धि और आत्मशुद्धि करके भक्तिपूर्वक मन, वचन, काय की शुद्धि से अब जिनेन्द्रदेव का महामह अर्थात् अभिषेक पूजा प्रारंभ करता हूँ।

इस कथित विधि के अनुसार आचार्य श्री नेमिचंद्र कृत प्रतिष्ठातिलक में क्रम से सर्वविधि का वर्णन है। प्रारंभ में जलस्नान के अनंतर "मंत्रस्नान" विधि का वर्णन है। अनंतर "पूजामुख विधि" शीर्षक में मंदिर में प्रवेश करने से लेकर सिद्धभक्ति तक का वर्णन है अर्थात् मंदिर में प्रवेश करना, प्रदक्षिणा देना, जिनालय की तथा जिनेन्द्रदेव की स्तुति करना, ईर्यापथ शुद्धि करके सकलीकरण करना, द्वारोद्घाटन, मुखवस्त्र उत्सारण (वेदी के सामने का वस्त्र हटाना) पुनः सामायिक विधि स्वीकार कर विधिवत् कृत्य विज्ञापना करके सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि करके लघु सिद्धभक्ति करना यहाँ तक पूजामुख विधि होती है।

पुनः विधिवत् अभिषेक करने का विधान है। अनंतर नित्य पूजा के बाद अंत में जो विधि करनी चाहिये उसके लिये "अभिषेक पाठ" में ही अंत में चार श्लोक दिये गये हैं उन्हें देखिये—

१. अभिषेक पाठ संग्रह पृ. १।

निष्ठाप्यैवं जिनानां सवनविधिरपि प्रार्च्यभूभागमन्यं।
पूर्वोक्तैर्मंत्रयंत्रैरिव भुवि विधिनाराधनापीठयंत्रम्।।
कृत्वा सच्चंदनाद्यैर्वसुदलकमलं कर्णिकायां जिनेन्द्रान्।
प्राच्यां संस्थाप्य सिद्धानितरदिशि गुरून् मंत्ररूपान् निधाय।।३७।।
जैनं धर्मागमार्चानिलयमपि विदिक्पत्रमध्ये लिखित्वा।
बाह्ये कृत्वाथ चूर्णैः प्रविशदसदकैः पंचकं मंडलानाम्।।
तत्र स्थाप्यास्तिथीशा ग्रहसुरपतयो यक्षयक्ष्यः क्रमेण।
द्वारेशा लोकपाला विधिवदिह मया मंत्रतो व्याह्वियन्ते।।३८।।
एवं पंचोपचारैरिह जिनयजनं पूर्ववन्मूलमंत्रे-
णापाद्यानेकपुष्पैरमलमणिगणैरंगुलीभिः समंत्रैः।।
आराध्यार्हंतमष्टोत्तरशतममलं चैत्यभक्त्यादिभिश्च।
स्तुत्वा श्रीशांतिमंत्रं गणधरवलयं पंचकृत्वः पठित्वा।।३९।।
पुण्याहं घोषयित्वा तदनु जिनपतेः पादपद्मार्चितां श्री-
शेषां संधार्य मूर्ध्ना जिनपतिनिलयं त्रिःपरीत्य त्रिशुद्ध्या।
आनम्येशं विसृज्यामरगणमपि यःपूजयेत् पूज्यपादं
प्राप्नोत्येवाशु सौख्यं भुवि दिवि विबुधो देवनंदीडितश्रीः।।४०।।[१]

अर्थ—इस प्रकार जिनेन्द्रदेव की पूजाविधि को पूर्ण करके पूर्वोक्त मंत्र-यंत्रों से विधिपूर्वक आराधनापीठ यंत्र की पूजा करे, पुनः चंदन आदि के द्वारा आठ दल का कमल बनाकर कर्णिका में श्री जिनेन्द्रदेव को स्थापित कर पूर्वदिशा में सिद्धों को, शेष तीन दिशा में आचार्य, उपाध्याय और साधु को विराजमान करके पुनः विदिशा के दलों में क्रम से जैनधर्म, जिनागम, जिनप्रतिमा और जिनमंदिर को लिखकर बाहर में चूर्ण से और धुले हुये उज्ज्वल चावल आदि से पंचवर्णी मंडल बना लेवे। इस कमल के बाहर पंचदश तिथिदेवता को, नवग्रहों को, बत्तीस इंद्रों को, चौबीस यक्षों को, चौबीस यक्षिणी को तथा द्वारपालों को और लोकपालों को विधिवत् मंत्रपूर्वक मैं आह्वानन विधि से बुलाता हूँ।

इस तरह पंचोपचारों से मंत्रपूर्वक जिन भगवान् का पूजन कर पूर्ववत् मूल मंत्रों द्वारा अनेक प्रकार के पुष्पों से, निर्मल मणियों की माला से या अंगुली से एक सौ आठ जाप्य करके अरहंतदेव की आराधना करे। पुनः चैत्यभक्ति आदि शब्द से पंचगुरुभक्ति

१. अभिषेक पाठ संग्रह पृ. १२–१३।

और शांतिभक्ति के द्वारा स्तवन करके शांतिमंत्र और गणधरवलय मंत्रों को पाँच बार पढ़कर पुण्याहवाचन की घोषणा करना, इसके बाद जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों से पूजित श्रीशेषा/आसिका को मस्तक पर चढ़ाकर जिनमंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर, मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके और अमरगण अर्थात् पूजा के लिये बुलाए गए देवों का विसर्जन करके जो व्यक्ति "पूज्यपाद" जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता है वह "देवनन्दी" से पूजित श्री विद्वान् मर्त्यलोक और देवलोक में शीघ्र ही सुख को प्राप्त करता है। (३७ से ४०)

पुनः प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में देखिए—

नित्य अभिषेक पाठ में पहले पंचकुमार पूजा व दशदिक्पाल पूजा दी है। पुनः पंचामृत अभिषेक पाठ है। अनन्तर अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा, श्रुतपूजा, गणधरदेव पूजा दी है। अनन्तर यक्ष-यक्षी की पूजा दी है।

अथ यक्ष पूजा

-उपजाति छंद-

यक्षं यजामो जिनमार्गरक्षा-दक्षं सदा भव्यजनैकपक्षम्।
निर्दग्धनिःशेषविपक्षकक्षं, प्रतीक्ष्यमत्यक्षसुखे विलक्षम्।।१।।[१]

ॐ ह्रीं हे यक्ष! अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट्।
ॐ ह्रीं हे यक्ष! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं हे यक्ष! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (स्थापनं)।
ॐ ह्रीं यक्षाय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् स्वाहा।

अथ यक्षी पूजा

-उपजाति छंद-

यक्षीं सपक्षीकृतभव्यलोकां, लोकाधिकैश्वर्यनिवासभूताम्।
भूतानुकंपादिगुणानुमोदां, मोदांचितामर्चनमातनोमि।।१।।[२]

ॐ ह्रीं हे यक्षि! अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट्।
ॐ ह्रीं हे यक्षि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं हे यक्षि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (स्थापनं)।

१-२. प्रतिष्ठातिलक पृ. २७–२८।

ॐ ह्रीं हे यक्षीदेवि! इदं जलं गंधं अक्षतं पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् स्वाहा।

अनंतर नवदेवता की पूजा के बाद क्रमशः चौबीय यक्ष व चौबीस यक्षी— जिनशासन देव-देवियों के भी अर्घ्य हैं। यथा—

चौबीस यक्ष पूजा

-उपजाति छंद-

यक्षाधिका रक्षितधर्ममार्गा, ये गोमुखाद्यास्त्रिगुणाष्टसंख्याः।
तृतीयसन्मंडलवर्तिनस्तान्-सपर्यया प्रीतिजुषस्तनोमि[1]।।१३।।

ॐ ह्रीं गोमुख-महायक्ष-त्रिमुख-यक्षेश्वर-तुंबरु-कुसुम-वरनंदि-विजय-अजित-ब्रह्मेश्वर-कुमार-षण्मुख-पाताल-किन्नर-किंपुरुष-गरुड-गंधर्व-खेन्द्र-कुबेर-वरुण-भृकुटि-सर्वाण्ह-धरणेन्द्र-मातंगाभिधानचतुर्विंशति-यक्षदेवताः! अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्।

ॐ ह्रीं गोमुख-महायक्ष-त्रिमुख-यक्षेश्वर-तुंबरु-कुसुम-वरनंदि-विजय-अजित-ब्रह्मेश्वर-कुमार-षण्मुख-पाताल-किन्नर-किंपुरुष-गरुड-गंधर्व-खेन्द्र-कुबेर-वरुण-भृकुटि-सर्वाण्ह-धरणेन्द्र-मातंगाभिधानचतुर्विंशतियक्षदेवताः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं गोमुख-महायक्ष-त्रिमुख-यक्षेश्वर-तुंबरु-कुसुम-वरनंदि-विजय-अजित-ब्रह्मेश्वर-कुमार-षण्मुख-पाताल-किन्नर-किंपुरुष-गरुड-गंधर्व-खेन्द्र-कुबेर-वरुण-भृकुटि-सर्वाण्ह-धरणेन्द्र-मातंगाभिधानचतुर्विंशति-यक्षदेवताः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

ॐ ह्रीं गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षेभ्य इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं अक्षतान् पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा।

चौबीस यक्षी पूजा

-उपजाति छंद-

सम्यक्प्रभावितजिनेश्वरशासनश्री-चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवता याः।
यक्षप्रमाणकलिता गुणिसंघगृह्यास्तास्तुर्यमंडलगता बलिना धिनोमि[2]।।१४।।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी-रोहिणी-प्रज्ञप्ती-वज्रशृंखला-पुरुषदत्ता-मनोवेगा-काली-ज्वालामालिनी-महाकाली-मानवी-गौरी-गांधारी-वैरोटी-अनंतमती-मानसी-महामानसी-जया-विजया-अपराजिता-बहुरूपिणी-चामुंडी-कूष्मांडिनी-पद्मावती-सिद्धायिन्यश्चेति

१. २. प्रतिष्ठातिलक पृ. ३३।

चतुर्विंशतिदेवताः! अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी-रोहिणी-प्रज्ञप्ती-वज्रशृंखला-पुरुषदत्ता-मनोवेगा-काली-ज्वालामालिनी-महाकाली-मानवी-गौरी-गांधारी-वैरोटी-अनंतमती-मानसी-महामानसी-जया-विजया-अपराजिता-बहुरूपिणी-चामुंडी-कूष्मांडिनी-पद्मावती-सिद्धायिन्यश्चेति चतुर्विंशतिदेवताः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी-रोहिणी-प्रज्ञप्ती-वज्रशृंखला-पुरुषदत्ता-मनोवेगा-काली-ज्वालामालिनी-महाकाली-मानवी-गौरी-गांधारी-वैरोटी-अनंतमती-मानसी-महामानसी-जया-विजया-अपराजिता-बहुरूपिणी-चामुंडी-कूष्मांडिनी-पद्मावती-सिद्धायिन्यश्चेति चतुर्विंशतिदेवताः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वर्यादिशासनदेवताभ्य इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं अक्षतान् पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा।

दिग्पाल पूजा

श्री पूज्यपाद स्वामी ने अभिषेक पाठ में दशदिक्पाल का अर्घ्य दिया है—

पूर्वाशादेश हव्यासन महिषगते नैर्ऋते पाशपाणे।
वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणीजीवितेश।।
सर्वेऽप्यायात यानायुधयुवतिजनैः सार्धमों भूर्भुवः स्वः।
स्वाहा गृह्णीत चार्घ्यं चरुममृतमिदं स्वस्तिकं यज्ञभागं[1]।।११।।

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवारा इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवाहन-कुबेरेशानधरणेन्द्रसोमनामदशलोकपाला आगच्छत आगच्छत संवौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, ममात्र सन्निहिता भवत भवत वषट् इदमर्घ्यं पाद्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा।

इन्द्रादिदशलोकपालपरिवारदेवतार्चनम्।

बृहत्स्नपन— श्री गुणभद्रभदन्त कृत अभिषेक पाठ में—

पृ. २५ से २८ तक दश दिक्पाल के अर्घ्य एवं क्षेत्रपाल का अर्घ्य है।

श्री अभयनंदि आचार्य विरचित 'लघु स्नपनं' की टीका में श्री भावशर्मकृत संस्कृत टीका है।

उसमें पृ. ५९-६० पर दश दिक्पालों के अर्घ्य हैं। पुनः पृ. ६६ से ७४ तक दशों दिक्पालों के पृथक्-पृथक् अर्घ्य हैं। यथा—

१. अभिषेक पाठ संग्रह पृ. ५।

ॐ पूर्वस्यां दिशि कुण्डलांशनिचयव्यालीढगण्डस्थलं
शक्रं मूर्धनि बद्धसाधुमुकुटं स्वारूढमैरावतम्।
पत्नीबान्धवभृत्यवर्गसहितं देवं समाह्वानये
पाद्यार्घाक्षतदीपगन्धकुसुमं दत्तं मया गृह्यताम्[1]।।१५।।

ॐ पूर्वस्यां दिशि इन्द्रदेवमाह्वानयामहे स्वाहा। अथ पूजामंत्रः — हे इन्द्र! आगच्छ। इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रमहत्तराय स्वाहा। इन्द्रपरिजनाय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। सोमाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा। भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा। ॐ इन्द्रदिक्पालाय स्वगणपरिवृताय पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च भावान्निवेदितं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

श्री गजांकुश कवि विरचित 'जैनाभिषेक' में श्री प्रभाचंद्र देवकृत संस्कृत टीका है। इसमें पृ. ९४ पर दशदिक्पाल का अर्घ्य है[2]।

पं. श्री आशाधर विरचित 'नित्यमहोद्योत' अभिषेक पाठ में क्षेत्रपाल की विधिवत् पूजा है। यथा —

क्षेत्रपालाय यज्ञेऽस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे।
बलिं दिशामि दिश्यग्नेर्वेद्यां विघ्नविघातिने।।३६।।[3]

ॐ आँ क्रों ह्रीं अत्रस्थ क्षेत्रपाल! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट्, इदं जलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा।

क्षेत्रपाल पूजा

विश्वम्भरामम्बुकुशानलाभ्यां संशोध्य सन्तर्प्य फणीन् सुधाभिः।
निक्षिप्य दर्भान्निखिलासु दिक्षु श्रीक्षेत्रपालाय बलिं ददामि।।३७।।

क्षेत्रपाल का लक्षण

तमालतरुकान्तिभाक् प्रकटिताट्टहासास्यवान्,
दयागुणसमन्वितो भुजगभूषणैर्भीषणः।
कनत्कनककिंकणीकलितनूपुरारावान् ,
दिगम्बरवपुर्मया जिनगृहेऽर्च्यते क्षेत्रपः।।३८।।

१. अभिषेक पाठ संग्रह 'लघुस्नपनं पृ. ६६–६७।
२. अभिषेक पाठ संग्रह 'जैनाभिषेक पृ. ९४।
३. अभिषेक पाठ संग्रह–नित्यमहोद्योतम् पृ. १४० से १४४।

क्षेत्रपाल का स्नपन

सद्यस्केन सुगन्धेन स्वच्छेन बहलेन च।
स्नपनं क्षेत्रपालस्य तैलेन प्रकरोम्यहम्।।३९।।

सिन्दुरैरारुणाकारैः पीतवर्णैः सुसंभवैः।
चर्चनं क्षेत्रपालस्य सिंदूरैः प्रकरोम्यहम्।।४०।।

भोः क्षेत्रपाल! जिनपप्रतिमाङ्कभाल,
दंष्ट्राकराल जिनशासनवैरिकाल।
तैलाहिजन्मगुडचन्दन - पुष्पधूपै -
र्भोगं प्रतीच्छ जगदीश्वरयज्ञकाले।।४१।।

इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण ॐ भूर्भुवःस्वः स्वधा स्वाहा इति क्षेत्रपालार्चनम्।

पुनः वास्तुदेव, वायुकुमार, मेघकुमार, अग्निकुमार, नागकुमार इन पंच कुमारों के आह्वानपूर्वक अर्घ्य हैं। यथा —

उत्खातपूरितसमीवृतसंस्वृतायां,
पुण्यात्मनीह भगवन्मखमण्डपोर्व्याम्।
वास्त्वर्चनादिविधिलब्धमखादिभागं,
वेद्यां यजामि शशिभृद्दिशि वास्तुदेवम्।।४२।।

पुनः दशदिक्पाल के पृथक्-पृथक् अर्घ्य हैं। यथा —

रूप्याद्रिस्पर्धिघंटायुगपटुटङ्कारभग्नारिशुम्भद् -
भूषासख्यातिचित्रोज्वलकुथविलसल्लक्ष्मवर्ष्माद्विपस्थम्।
दृप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रुच्यशच्यादिदेवी-
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेन्द्रं यजेऽहम्[1]।।९६।।

ॐ ह्रीं क्रों इन्द्र! आगच्छ आगच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रपरिजनाय स्वाहा, इन्द्रानुचराय स्वाहा, इन्द्रमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, ॐ इन्द्रदेवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं धूपं दीपं चक्रं बलिं अक्षतं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

१. त्रिलोक भास्कर, पृ. २३१।

शासन देव-देवी, क्षेत्रपाल, दिग्पाल आदि के आह्वानन-अर्घ्य-पूजा आदि के प्रमाण प्राचीन आगम ग्रंथों में तो हैं ही, वर्तमान में भी बड़वानी, सोनागिरि, कुण्डलपुर, सम्मेदशिखर , अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, अयोध्या आदि अनेक तीर्थों पर तथा तेरहपंथ आम्नाय के प्राचीन एवं अर्वाचीन मंदिरों में विराजमान हैं। इनकी पूजा-अर्चना भी आगमसम्मत है।

पंचामृत अभिषेक के प्रमाण

(पद्मपुराण से)

कलस चउक्कं ठाविय चउसु वि कोणेसु णीरपरिपुण्णं।
घयदुद्धदहियभरियं णवसयदलछण्णमुहकमलं।।
कलश चतुष्कं स्थापयित्वा चतुर्ष्वपि कोणेषु नीरपरिपूर्णं।
घृतदुग्धदधिभृतं नवशतदलच्छन्नमुखकमलं[1]।।४३८।।

संक्षिप्त अर्थ—तदनंतर चारों कोनों में जल से भरे हुए चार कलश स्थापन करने चाहिए तथा मध्य में पूर्ण कलश स्थापन करना चाहिए। इनके अतिरिक्त घी, दूध, दही इनसे भरे हुए कलश भी स्थापन करने चाहिए। इन सब कलशों के मुख पर नवीन सौ दल वाले कमल रखने चाहिए।

उच्चरिऊण मंते अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स।
णीरघयखीरदहियं खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे।।
उच्चार्य मंत्रान् अभिषेकं कुर्यात् देवदेवस्य।
नीरघृतक्षीरदधिकं क्षिपेत् अनुक्रमेण जिनशीर्षे।।४४१।।

तदनंतर देवाधिदेव भगवान अरहंत देव का अभिषेक करना चाहिए। वह अभिषेक अनुक्रम से जल, घी, दूध, दही आदि पदार्थों से मंत्रों का उच्चारण करते हुये भगवान के मस्तक पर से करना चाहिए।

ण्हवणं काऊण पुणो अमलं गंधोवयं च वंदित्ता।
सवलहणं च जिणिंदे कुणऊ कस्सीरमलएहिं।।
स्नपनं कारयित्वा पुनः अमलं गन्धोदकं च वन्दित्वा।
उद्वर्तनं च जिनेन्द्रे कुर्यात् काश्मीरमलयैः।।४४२।।

१. पद्मपुराण सर्ग-६८।

अर्थ—इस प्रकार अभिषेक कर निर्मल गंधोदक की वंदना करनी चाहिए फिर काश्मीरी केसर तथा चंदन आदि से भगवान का उद्वर्तन करना चाहिए। अभिषेक के अनंतर चन्दन, केसर आदि द्रव्यों की सर्वौषधि बनाकर उससे प्रतिमा का उबटन करना चाहिए। फिर कोण कलशों से तथा पूर्ण कलश से अभिषेक करना चाहिए। यह विधि अत्यंत संक्षेप से कही है। इसकी पूर्ण विधि अभिषेक पाठ से जान लेनी चाहिए।

घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः।
मुक्तादामादिसत्कंठा रत्नरश्मिविराजिताः।।१४।।
जिनबिम्बाभिषेकार्थ-माहूता भक्तिभासुराः।
दृश्यंते भोगिगेहेषु शतशोऽथ सहस्त्रशः।।१५।।

अर्थ—जो घी, दूध आदि से भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे, जिनके कण्ठ में मोतियों की मालाएँ लटक रही थी, जो रत्नों की किरणों से सुशोभित थे, जो नाना प्रकार के बेल-बूटों से देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये गये थे, ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थों के घरों में दिखाई देते थे।

भावार्थ—लंका में स्थित शांतिनाथ चैत्यालय में भक्तिमान लंका के लोग घृत, दुग्ध, दधि आदि से भरे हुए कलश जिनके कि कंठ भाग मोतियों की माला से सुशोभित हो रहे हैं, जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के लिए लाये।

चंदन लेपन के प्रमाण

श्री चन्दनं विनानैव, पूजां कुर्यात्कदाचन।
प्रभाते घनसारस्य, पूजा कार्या विचक्षणैः[1]।।१२५।।

अर्थ—श्री जिनेन्द्र देव की पूजा बिना चन्दन के कभी नहीं करनी चाहिए। चतुर पुरुषों को प्रातः काल के समय चन्दन से पूजा अवश्य करनी चाहिए।

भावार्थ—प्रातः काल में भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा उनके चरणारविंद के अंगुष्ट पर चन्दन लगाकर करनी चाहिए। यद्यपि भगवान की पूजा अष्टद्रव्य से की जाती है और वह अभिषेक पूर्वक ही होती है तथापि अभिषेक के बाद चरणों पर चंदन लगाना आवश्यक माना जाता है। यदि अष्टद्रव्य का समागम न मिले तो केवल भगवान के चरण के अंगूठे पर चंदन लगाने से ही भगवान की पूजा समझी जाती है। यदि भगवान के चरणों पर चंदन न लगाया जाये और बिना चंदन लगाये ही पूजा की जाती है तो वह पूर्ण पूजा नहीं समझी जाती, प्रातःकाल के समय चंदन पूजा ही मुख्य मानी गई है।

१. उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ४७।

चंदणसुअन्धलेओ, जिणवर-चरणेसु जो कुणई भविओ।
लहइ तणू विक्किरियं, सहावसुयंधयं अमलं।।[१]
चन्दनसुगंधलेपं, जिनवरचरणेषु यः करोति भव्यः।
लभते तनुं वैक्रियिकं, स्वभावसुगन्धकं अमलं।।४७१।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों पर (जिन प्रतिमा के चरण कमलों पर) सुगंधित चन्दन का लेप करता है उसको स्वर्ग में जाकर अत्यन्त निर्मल और स्वभाव से ही सुगंधित वैक्रियक शरीर प्राप्त होता है।

भावार्थ—चन्दन से पूजा करने वाला भव्य जीव स्वर्ग में जाकर उत्तम देव होता है।

पुष्प चढ़ाने के प्रमाण

अलि-चुंबिएहिं पुज्जइ, जिणपयकमलं च जाइमल्लीहिं।
सो हवइ सुरवरिंदो, रमेई सुरतरुवरवणेहिं।।[२]
अलि-चुम्बितैः पूजयति, जिनपद-कमलं च जातिमल्लिकैः।
स भवति सुरवरेन्द्रः, रमते सुरतरुवरवनेषु।।४७३।।

अर्थ—जो भव्य पुरुष भगवान जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की जिन पर भ्रमर घूम रहे हैं ऐसे चमेली, मोगरा आदि उत्तम पुष्पों से पूजा करता है वह स्वर्ग में जाकर अनेक देवों का इन्द्र होता है और वह वहाँ पर चिरकाल तक स्वर्ग में होने वाले कल्पवृक्षों के वनों में (बगीचों में) क्रीड़ा किया करता है।

सचित्त पूजा निर्दोष है

माल्यगंधप्रधूपाद्यैः, सचित्तैः कोऽर्चयेज्जिनम्।
सावद्यसंभवं वक्ति यः, स एवं प्रबोध्यते[३]**।।१४०।।**
जिनार्चानेकजन्मोत्थं, किल्विषं हंति यत्कृतम्।
सा किंचिद् यजनाचारभवं सावद्यमंगिनाम्।।१४१।।

अर्थ—कोई कोई लोग यह कहते हैं कि पुष्पमाला, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित्त पदार्थों से भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सचित्त पदार्थों से पूजा करने में सावद्य जन्य पाप (सचित्त के आरंभ से उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिए आचार्य समझाते हैं कि भगवान की पूजा करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट

१-२. भावसंग्रह पृ. १०२। ३. उमास्वामी श्रावकाचार पृ. ५५।

हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजा से उसी पूजा में होने वाला आंरभ जनित वा सचित्तजन्य थोड़ा सा पाप नष्ट नहीं होगा ? अवश्य होगा।

स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाण

अत्यंतसुकुमारस्य, जिनस्य सुरयोषितः।[१]
शच्याद्याः पल्लवस्पर्श-सुकुमारकरास्ततः।।१७२।।
दिव्यामोदसमाकृष्टषट्पदौघानुलेपनैः ।
उद्वर्तयन्त्यस्ताः प्रापुः, शिशुस्पर्शसुखं नवम्।।१७३।।
ततो गंधोदकैः कुंभैरभिषिंचन् जगत्प्रभुं।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतं।।१७४।।

शचि आदि देवियों ने अत्यंत सुकुमार जिनबालक के शरीर पर दिव्य सुगंधित चंदन विलेपन करके शिशु के स्पर्श के नूतन सुख का अनुभव किया। पुनः सुगंधित जल से भरे हुये कलशों से जगत के प्रभु का अभिषेक किया।

गृहीतगंध-पुष्पादि-प्रार्चनाः सपरिच्छदा।[२]
अथैकदा जगामैषा, प्रातरेव जिनालयम्।।५५।।
त्रिःपरीत्य ततः स्तुत्वा, जिनांश्च चतुराशया।
संस्नाप्य पूजयित्वा च, प्रयाता यति संसदि।।५६।।

वह कन्या सपरिवार गंध, पुष्प आदि पूजन सामग्री लेकर प्रातः ही जिनमंदिर में पहुंची। वहां पर तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करके और उनकी पूजा करके यतियों की सभा में पहुंचती है।

अथैकदा सुता सा च सुधीः मदनसुंदरी।
कृत्वा पंचामृतैः स्नानं, जिनानां सुखकोटिदम्।।[३]

एक समय विदुषीमदन सुंदरी ने करोड़ों सुखों को देने वाला ऐसा जिनेन्द्रदेव का पंचामृतों से अभिषेक किया।

तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञीपदं महत्।[४]
दिव्यान् भोगान् प्रभुंजाना, पूर्वपुण्यप्रसादतः।।३८।।
पूजयंती जगत्पूज्यान्, जिनान् स्वर्गापवर्गदान्।
दिव्यैरष्टमहाद्रव्यैः, स्नपनादिभिरुज्ज्वलैः।।३९।।

१. हरिवंशपुराण सर्ग ८ पृ. १५९ २. जिनदत्त चरित्र– गुणभद्राचार्य कृत
३. श्रीपालचरित बृहन्नेमिचन्द्रकृत ४. आराधना कथा कोष भाग–३ पृ. ४२।

तब वृषभसेना सम्राज्ञीपद को प्राप्त कर पूर्व पुण्य से दिव्य भोगों को भोगती हुयी जगत्पूज्य जिनप्रतिमाओं की अभिषेकपूर्वक पूजा करती थी।

जनेऊ धारण के प्रमाण

यज्ञोपवीत धारण करके ही भगवान के अभिषेक व पूजा का विधान है। यथा—

श्री पूज्यपादस्वामीकृत अभिषेक पाठ से—

ब्रह्मस्थानमिदं दिशावलयमप्येतन्पवित्रांकुशै-
रर्हद्ब्रह्ममहामहाध्वरविधिप्रत्यूहविध्वंसिभिः।
जैनब्रह्मजनैकभूषणमिदं यज्ञोपवीतं मया
विभ्राणेन महेन्द्रविभ्रमकरं संघार्यते मण्डनम्[1]।।५।।

श्री गुणभद्राचार्य कृत अभिषेक पाठ से—

ॐ मतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्[2]।।१५।।

अन्य अभिषेक पाठ से—

अतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणमाभरणम्।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा।

१-२. अभिषेक पाठ संग्रह।

हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप में जिनमंदिर

अनादिनिधन-मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीचों बीच में प्रथम द्वीप नाम जम्बूद्वीप है।

इसमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

हम और आप इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में हैं।

जम्बूद्वीप के शाश्वत ७८ जिनमंदिर— इस जम्बूद्वीप में बीचोंबीच में सुदर्शनमेरु पर्वत है।

इसमें भद्रसाल, नंदन, सौमनस और पाण्डुक ये चार वन अर्थात् सुन्दर-सुन्दर उद्यान हैं।

इनमें ४ दिशाओं के ४-४ जिनमंदिर ऐसे १६ जिनमंदिर हैं। इस पर्वत की विदिशा में चार गजदंत के ४ जिनमंदिर हैं। इस पर्वत के उत्तर-दक्षिण में जम्बूवृक्ष, शाल्मलि वृक्ष के दो मंदिर हैं।

इस सुमेरु के पूर्व-पश्चिम में ८-८ वक्षार ऐसे १६ वक्षारों के १६ जिनमंदिर हैं।

हिमवान आदि छह पर्वतों—कुलाचलों के ६ जिनमंदिर है। सुमेरु के पूर्व में १६ विदेह देशों के १६ एवं पश्चिम में १६ विदेहों के १६ ऐसे ३२ विदेह क्षेत्रों में बीचोंबीच में एक-एक विजयार्ध ऐसे ३२ विजयार्ध पर्वतों के ३२ जिनमंदिर हैं।

ऐसे ही भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के बीच में १-१ विजयार्ध पर्वत के २ जिनमंदिर हैं।

इस प्रकार सुमेरु के १६+गजदंत के ४ + जंबूवृक्ष आदि २+सोलह वक्षार के १६+छह कुलाचलों के ६+विदेह के बत्तीस विजयार्ध के ३२+भरत-ऐरावत के विजयार्ध के २=७८ जिनमंदिर हैं।

देवभवन— यहाँ हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप में हिमवान् पर्वत के १० आदि ऐसे १२० देवभवन हैं। जम्बूद्वीप के प्रवेश में जम्बूद्वीप रक्षक अनावृत देव का एक भवन है। इन १२३ देवभवनों में गृह चैत्यालय के समान एक-एक जिनप्रतिमा विराजमान हैं अतः १२३ जिनप्रतिमाएँ हैं।

छह समवसरण— पूर्वविदेह में श्री सीमंधर स्वामी, श्री युगमंधर स्वामी एवं पश्चिम विदेह में श्री बाहु-स्वामी और श्री सुबाहुस्वामी तथा दक्षिण में भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड की अयोध्या में भगवान ऋषभदेव तथा ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड में श्री बालचन्द्र तीर्थंकर भगवान ऐसे छह भगवन्तों के छह समवसरण के प्रतीक यहाँ गंधकुटी के रूप में चतुर्मुखी छह प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

जम्बूद्वीप में २२१ जिनप्रतिमाएं—इस प्रकार जम्बूद्वीप में ७८ जिनमंदिर, १२३ देवभवन के जिनमंदिर व छह समवसरण की ६ चतुर्मुखी प्रतिमाएं ऐसी ७८+१२३+६=२०७ जिनप्रतिमाएं विराजमान है तथा गंगा-सिंधु आदि १४ महानदियों के गोमुख से गिरने के नीचे गंगा आदि देवी के महल की छत पर १४ जटाजूट सहित जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। ऐसे कुल (२०७+१४=२२१) जिनप्रतिमाएं हैं।

इन सभी जिनप्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

जम्बूद्वीप में ७८ जिनमंदिर, ६ भोगभूमि, ३४ कर्मभूमि के ३४ आर्यखण्ड, प्रत्येक भूमि में ५-५ म्लेच्छ खंड ऐसे १७० (३४×५=१७०) हैं। हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी छह पर्वतों पर १-१ ऐसे छह सरोवर हैं। पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुंडरीक और पुण्डरीक ये उनके नाम हैं। इन छह सरोवरों के कमलों पर श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये देवियाँ रहती हैं, वे ही तीर्थंकर की माता की सेवा करने आती हैं।

हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप में जिनप्रतिमाएं

तेरहद्वीप रचना में २१२७ जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

४५८ अकृत्रिम जिनमंदिर—तेरहद्वीप रचना में प्रथम जम्बूद्वीप में ७८ जिनप्रतिमाएँ हैं। उसे घेरकर लवण समुद्र है। उसे घेरकर धातकीखण्डद्वीप है। इसमें दक्षिण-उत्तर में १-१ इष्वाकार पर्वत हैं। अतः दो खण्ड हो गये।

पूर्व धातकीखण्ड में विजयमेरु है एवं जंबूवृक्ष के स्थान पर धात्रीवृक्ष—आंवले का वृक्ष है। शेष सारी रचना जम्बूद्वीप के समान है। अतः यहाँ भी ७८ जिनमंदिर हैं।

ऐसे ही पश्चिम धातकी खण्ड में बीच में अचलमेरु है। शेष रचना पूर्वधातकीखण्ड के समान होने से यहाँ भी ७८ जिनमंदिर हैं।

इस धातकीखण्ड को घेरकर कालोदधिसमुद्र है। इसे घेरकर पुष्करद्वीप है। इसके बीचों-बीच में मानुषोत्तर पर्वत है। अतः इस तरफ के आधे पुष्करद्वीप को पुष्करार्धद्वीप कहते हैं। इसमें भी दक्षिण-उत्तर में इष्वाकार नाम के दो पर्वत हैं।

इस निमित्त से वहाँ भी पूर्व पुष्करार्धद्वीप और पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप दो भेद हो गये हैं।

पूर्व पुष्करार्ध में मंदरमेरु है और पश्चिम पुष्करार्ध में विद्युन्माली मेरु है एवं धातकी वृक्ष की जगह पुष्कर वृक्ष है। शेष रचना धातकीखण्ड के समान होने से यहाँ भी ७८-७८ जिनमंदिर हैं।

इस प्रकार ७८ को ५ से गुणा करने पर ७८×५=३९० तीन सौ नब्बे अकृत्रिम जिनमंदिर हो गये। पुनश्च धातकीखण्ड के २ इष्वाकार एवं पुष्करार्ध के २ इष्वाकार इन ४ पर्वतों के ४ जिनमंदिर तथा मानुषोत्तर पर्वत के ४ दिशाओं के ४ जिनमंदिर ये ३९०+४+४=३९८ अकृत्रिम जिनमंदिर ढाईद्वीप में हैं।

आगे चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें द्वीप में जिनमंदिर नहीं है। पुनः आठवें नंदीश्वर द्वीप में चारों दिशाओं में क्रम से १३-१३ ऐसे १३×४=५२ जिनमंदिर हैं।

इसके आगे ९वें, १०वें द्वीप को छोड़कर ग्यारहवें द्वीप के बीच में कुण्डलवरपर्वत के ४ दिशाओं में ४ जिनमंदिर हैं।

इसके आगे १२वें को छोड़कर तेरहवें रुचकवर द्वीप के बीच में रुचकवर पर्वत पर चारों दिशाओं में १-१ ऐसे ४ मंदिर हैं।

इस प्रकार ढाई द्वीप के ३९८+आठवें द्वीप के ५२+ग्यारहवें द्वीप के ४+तेरहवें द्वीप के ४=४५८ (चार सौ अट्ठावन) ऐसे अकृत्रिम जिनमंदिर हैं।

यहाँ तेरहद्वीप की रचना में ८२१ देवभवनों के ८२१ जिनमंदिर में ८२१ जिनप्रतिमाएं हैं।

प्रत्येक जिनमंदिर में १०८-१०८ जिनप्रतिमाएँ होती हैं किन्तु यहाँ रचना में १-१ प्रतिमा विराजमान हैं, इसके प्रतीक में एक सिंहासन पर १०८ जिनप्रतिमाएँ विराजमान की गईं हैं।

इस प्रकार स्वयं सिद्ध अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं के समान यहाँ रचना में ४५८+८२१+१०८=ऐसी १३८७ सिद्धप्रतिमाएं विराजमान हैं।

१७० समवसरण—तेरहद्वीप रचना में ढाईद्वीप तक १७० कर्मभूमि हैं। जैसे कि जम्बूद्वीप में ३२ विदेह क्षेत्र व एक भरत क्षेत्र तथा एक ऐरावत क्षेत्र ऐसी ३४ कर्मभूमि हैं। आगे पूर्वधातकीखण्ड, पश्चिमधातकीखण्ड, पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध में ३४-३४ कर्मभूमि होने से ३४×५=१७० कर्मभूमियाँ हो गई हैं। इन कर्मभूमियों के आर्यखण्डों में भगवान अजितनाथ के समय एक साथ १७० तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। अतः यहाँ पर १७० कर्मभूमियों में १७० समवसरण बनाये गये हैं। ४ समवसरण ८-८ भूमि सहित हैं। शेष समवसरण गंधकुटी के रूप में हैं। सभी में समवसरण में चतुर्मुखी तीर्थंकरों के प्रतीक में ४-४ जिनप्रतिमाएं होने से १७०×४=६८० जिनप्रतिमाएँ तीर्थंकरों की विराजमान हैं।

अन्य जिनप्रतिमाएं—यहाँ तेरहद्वीप रचना में एक सिंहासन पर विदेह क्षेत्रों के विद्यमान श्री सीमंधर आदि २० तीर्थंकरों की २० प्रतिमाएं विराजमान हैं तथा एक

सिंहासन पर श्री ऋषभदेव आदि २४ तीर्थंकर प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

पुनः ५ भरत क्षेत्र की ५ प्रतिमाएं, श्री शांतिनाथ, श्री मुनिचंद्रनाथ, श्री बाहु स्वामी, श्री विमलेन्द्रनाथ एवं श्री सुसंयतनाथ की ५ प्रतिमाएँ हैं। पाँच ऐरावत क्षेत्रों की श्री अनंतवीर्यनाथ, श्री सर्वनाथ, श्री हरिवासवनाथ, श्री मरुदेवनाथ एवं श्री स्वच्छनाथ ऐसे ५ भगवन्तों की ५ प्रतिमाएँ हैं।

तथा च-श्री ऋषभदेव, श्री सीमंधर स्वामी, श्री सुबाहुस्वामी एवं श्री वीरसेन स्वामी इनकी ४ प्रतिमाएँ एवं श्री अजितनाथ एवं श्री महावीर स्वामी की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

ये तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ ६८०+२०+२४+१६=७४० हैं।

इस प्रकार यहाँ तेरहद्वीप रचना में ४५८+८२१+ १०८+६८०+२०+२४+५+५+ ४+२=२१२७ जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

पुनश्च यहाँ भगवान ऋषभदेव की दीक्षा-कल्याणक की प्रतिमा, आहारदान की प्रतिमा, भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ की प्रतिमा आदि अन्य प्रतिमाएँ भी विराजमान हैं।

इन सभी जिनप्रतिमाओं को मेरा नमस्कार होवे।

इस प्रकार तेरहद्वीप रचना में पाँच मेरुपर्वत हैं, ४५८ जिनमंदिर हैं। ८२१ देवभवन हैं। १७० कर्मभूमि हैं, जिनमें १७० समवसरण हैं। ३० भोगभूमियाँ हैं। लवणसमुद्र व कालोदधि समुद्र में कुभोगभूमि के प्रतीक में कुछ कुभोगभूमिज मनुष्य दिखाये गये हैं। सुमेरुपर्वत आदि सभी पर्वतों के वर्ण शास्त्र के आधार से दिखाये गये हैं। पर्वतों के सरोवरों में कमलों पर श्री आदि देवियाँ दिखाई गई हैं। यथास्थान नदी, सरोवर, पर्वत, भोगभूमि, कर्मभूमि दिखाई गई हैं। नंदीश्वर द्वीप के अंजनगिरि आदि पर्वत भी शास्त्र के आधार से हैं।

हस्तिनापुर में निर्मित तीन लोक रचना के जिनमंदिर

तीन लोक १४ राजु ऊँचा, ७ राजू मोटा — गहरा है। चौड़ाई में नीचे ७ राजु चौड़ा, पुनः घटते हुए मध्य में १ राजु, पुनः बढ़ते हुए ब्रह्मस्वर्ग के पास (साढ़े तीन राजु ऊपर जाकर) ५ राजु, पुनः घटते हुए १ राजु हो गया है।

इसके ठीक बीच में कुछ कम १३ राजु ऊँची, १ राजु चौड़ी, १ राजु मोटी त्रसनाड़ी है।

अधोलोक — इसमें ७ राजु में १० भाग कीजिए। सबसे नीचे निगोद है। पुनः सातवें, छठे आदि ७ नरक हैं। पुनः दो भाग के नाम हैं — खरभाग, पंकभाग।

इन दोनों भागों में भवनवासी देवों के भवनों में ७,७२००००० जिनमंदिर हैं एवं व्यंतर देवों के भवनों में असंख्यात जिनमंदिर हैं।

अधोलोक से ऊपर के ७ राजु में २१ भाग कीजिए।

मध्यलोक — प्रथम भाग १ लाख योजन ऊँचा एवं १ राजु चौड़ा है, यही मध्यलोक है। इसी में असंख्यात द्वीप, समुद्रों में सर्वप्रथम द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है एवं प्रथम समुद्र का नाम लवणसमुद्र है तथा अंतिम द्वीप का नाम स्वयंभूरमणद्वीप पुनः सबसे अंत में स्वयंभूरमण समुद्र है।

इसी मध्यलोक में तेरहद्वीपों तक ४५८ जिनमंदिर हैं। असंख्यात द्वीप-समुद्रों तक भवनवासी देवों के अगणित भवनपुर, आवास हैं। व्यंतर देवों के असंख्यात भवनपुर, आवास हैं। ये पर्वतों पर देवभवनों के रूप में हैं तथा समुद्र, नदी, सरोवर, वृक्ष आदि पर आवास बने हुए हैं। इन सभी में अगणित एवं असंख्यातों जिनमंदिर हैं।

सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि ज्योतिषी देवों के भी मध्यलोक में असंख्यात विमानों में असंख्यात जिनमंदिर हैं।

इस मध्यलोक में ही ढाई द्वीपों तक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण आदि महापुरुष होते हैं। मनुष्यों का अस्तित्व यहीं तक है। पशु, पक्षी, कीट, पतंगे आदि इस मध्यलोक में ही होते हैं।

अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता इन ढाईद्वीपों में ही हैं। कृत्रिम जिनमंदिर, जिन-प्रतिमाएं, भूत, भविष्यत्, वर्तमानकाल की अपेक्षा अनंतानंत हैं। पंचकल्याणक तीर्थ, सिद्धक्षेत्र एवं अतिशय क्षेत्र भी तीनकाल की अपेक्षा अनंतानंत हैं। अधोलोक एवं ऊर्ध्वलोक में केवल जिनचैत्य, चैत्यालय ये दो देवता ही हैं।

ऊर्ध्वलोक — मध्यलोक से ऊपर यह २० भागों में विभक्त है।

सौधर्म, ईशान आदि १६ स्वर्ग, दो-दो युगल एक साथ हैं, अतः ८ भागों में १६ स्वर्ग हैं। नव भागों में ९ ग्रैवेयक हैं। एक भाग में नव अनुदिश एवं एक भाग में पाँच अनुत्तर हैं। ऐसे १९ भागों में इन स्वर्ग, ग्रैवेयक आदि में ८४,९७०२३ जिनमंदिर हैं।

सिद्धशिला — ऊर्ध्वलोक में इक्कीसवें भाग में सिद्धशिला है। यह ४५ लाख योजन विस्तृत अर्धगोलक सदृश बीच में ८ योजन ऊँची ऐसी सिद्धशिला है।

ढाई द्वीप तक मानुषोत्तर पर्वत तक ही मनुष्यों का आवास है। यह ढाईद्वीप भी ४५ लाख योजन विस्तृत है। इसे मनुष्यलोक भी कहते हैं। यहीं से मनुष्य मुनि बनकर कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त करते हैं और एक समय में ऊर्ध्वगमन कर सिद्धशिला के ऊपर विराजमान हो जाते हैं।

सिद्धशिला के ऊपर सिद्ध भगवान हैं—

सिद्धशिला से ऊपर ३७०००००, ८६०००, ९७५ धनुष ऊपर जाकर ५२५ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं। जैसे कि श्री बाहुबली ५२५ धनुष ऊँचे थे। एक धनुष में ४ हाथ होते हैं।

जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य सिद्धशिला से ३७ लाख, ८७ हजार, ४९९ धनुष अर्ध हाथ प्रमाण ऊपर जाकर विराजमान हैं। मध्यम अवगाहना वाले उत्कृष्ट से नीचे और जघन्य के ऊपर अनेक अवगाहना से सहित हुए सिद्धशिला से ऊपर विराजमान हैं।

इन सभी सिद्ध भगवन्तों को मेरा अनंत-अनंतबार नमस्कार होवे।

तीनलोक के अकृत्रिम जिनमंदिर— तीनों लोकों में ७७२०००००+४५८+८४९७०२३=८५६९७४८१ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। ९२५ करोड़, ५३ लाख, २७ हजार, ९४८ जिनप्रतिमाएँ हैं। व्यंतर देव व ज्योतिष्क देवों के असंख्यात जिनमंदिर हैं। सभी में १०८-१०८ जिनप्रतिमाएँ हैं।

नवनिर्मित तीनलोक रचना— यहाँ जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में नवनिर्मित तीनलोक रचना में अधोलोक में नारकी दिखाये गये हैं। इसी अधोलोक में प्रथम पृथ्वी के खरभाग और पंकभाग में भवनवासी के १० भेद व व्यंतर देवों के ८ भेदों के १-१ मंदिर ऐसे १०+८=१८ मंदिर स्थापित हैं। उन १८ प्रकार के इंद्रों के महल के आगे के प्रतीक में १८ चैत्यवृक्ष हैं। उनमें भी ४-४ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मध्यलोक में— ढाईद्वीप में पाँच मेरु दिखाये गये हैं एवं श्री ऋषभदेव, शांतिनाथ आदि की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ मध्यलोक में मनुष्य और तिर्यंच दिखाये गये हैं। यहीं पर सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र व ताराओं के विमान दिखाये गये हैं।

मध्यलोक के ऊपर सोलह स्वर्गों में १-१ मंदिर हैं। सौधर्मेन्द्र के महल आदि बने हैं। इंद्र सभा बनाई गई हैं। चैत्यवृक्ष एवं मानस्तंभ तथा नीलांजना आदि नृत्यांगनाएँ हैं। यथास्थान इंद्र-इन्द्राणी, देव-देवियाँ दिखाये गये हैं।

इनसे ऊपर नवग्रैवेयक में ९ मंदिर, नव अनुदिश के ९ मंदिर एवं पाँच अनुत्तर के ५ मंदिर हैं। यथास्थान अहमिन्द्र दिखाये गये हैं।

अनंतर सिद्धशिला पर पद्मासन एवं खड्गासन सिद्धप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इस प्रकार यहाँ तीनलोक रचना में अधोलोक में १०+८=१८ मंदिर, मध्यलोक में पाँच मेरु में प्रतिमाएँ, मध्यलोक में प्रतिमाएँ एवं सूर्य, चंद्र में प्रतिमा विराजमान हैं। ऊर्ध्वलोक में १६+९+९+५=३९ मंदिर हैं। ऐसे १०+८+१६+९+९+५=५७ मंदिरों में प्रत्येक में ४-४ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

अधोलोक में १८ एवं १६ स्वर्गों में १६ ऐसे १८+१६=३४ चैत्यवृक्षों में ४-४ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इस प्रकार ५७ मंदिर में ५७×४=२२८ पुनः ३४ चैत्यवृक्षों की ३४×४=१३६, मध्यलोक में मेरु की ४०+२ सूर्य, २ चंद्र की ४ तथा अन्य २८ प्रतिमाएँ एवं सिद्धशिला की ४ पद्मासन एवं ८ खड्गासन ऐसी १२ प्रतिमाएँ हैं। कुल मिलाकर २२८+१३६+४०+४+२८+१२= ४४८ प्रतिमाएँ यहाँ विराजमान हैं। इन सभी ४४८ जिनप्रतिमाओं को तीनलोक भ्रमण समापन हेतु मेरा मन, वचन, कायपूर्वक अनंत-अनंत बार नमस्कार होवे।

तीनलोक का ध्यान— प्रतिदिन खड़े होकर दोनों पैर फैलाकर कमर पर दोनों हाथ रखकर अपने आप को तीन लोक बनाकर ध्यान करना चाहिए। ध्यान में तीन लोक के जिनमंदिरों को, जिनप्रतिमाओं को, नवदेवताओं को स्थापित करने से यह शरीर पवित्र हो जायेगा। मन पवित्र होगा, वचन पवित्र होंगे। शरीर पवित्र होकर स्वस्थ होगा पुनः अपने आपको सिद्धशिला तक ले जाना चाहिए। जिससे एक न एक दिन अपनी आत्मा नियम से सिद्ध परमात्मा बन जायेगी। यही इस तीनलोक के ध्यान का सार है।

प्रशस्ति

–नरेन्द्र छंद –

तीर्थंकर के चरण कमल में, झुक झुक शीश नमाऊँ।
सरस्वती का वंदन करके, त्रिविध साधु गुण गाऊँ।।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मंगल कर्ता जग में।
इनके मंदिर प्रतिमायें भी सदा सौख्यकर जग में।।1।।

मूल संघ में कुंदकुंद, आम्नाय प्रसिद्ध हुआ है।
गच्छ सरस्वति बलात्कार गण, इसमें मान्य हुआ है।।
श्री चारित्रचक्रवर्ती, आचार्य शांतिसागर जी।
इनके प्रथम शिष्य पट्टाधिप, गुरू वीरसागर जी।।2।।

मुझे आर्यिका दीक्षा देकर, ज्ञानमती कर जग में।
ज्ञानामृत कण से पावन कर, सार्थक नाम दिया मे।।
जिनमंदिर मूर्ति निर्माण की, परंपरा भी आदी।
रचना यह संकलित किया मैं, अनादि तथापि युगादी।।3।।

वीर संवत् पचीस सौ, ब्यालिस पौष वदी द्वितीया में।
ग्रंथ संकलित पूर्ण किया मैं, केवलज्ञान तिथी में।।
जिनमंदिर जिनप्रतिमा जग में, जब तक मंगलमय हो।
तब तक गणिनी ज्ञानमती कृत, ग्रंथ भव्य सुखप्रद हो।।4।।

।।इति शं भूयात्।।

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-महाकुंभ का पर्व महान.....

जिनमंदिर का निर्माण, करो सब मिलके करो।
करो सब मिलके करो, करो सब मिलके करो...,
इससे मिलता है पुण्य महान, करो सब मिल के करो।।टेक.।।

मंदिर में राजें जिनवर प्रतिमा, तीर्थंकर चौबीसों की महिमा।
चौबीसों प्रभू का गुणगान, करो सब मिलके करो।।जिन.।।1।।

मंदिर में बजते हैं घंटे झालर, जिनवर पे ढुरते हैं चौंसठ चामर।
प्रभु आरती का पुण्य महान, करो सब मिलके करो।।जिन.।।2।।

मंदिर व प्रतिमा निर्माण जैसा, दूजा न कोई है पुण्य वैसा।
धन बढ़ता है करने से दान, करो सब मिलके करो।।जिन.।।3।।

मंदिर में सोने की ईंट लगाओ, सोना ही सोना जीवन में पाओ।
अपनी आत्मा को स्वर्ण समान, करो सब मिलके करो।।जिन.।।4।।

मंदिर के दर्शन की कर लो प्रतिज्ञा, "चन्दनामती" आज लेना ये शिक्षा।
सम्यग्दर्शन से आत्मा महान, करो सब मिलके करो।।जिन.।।5।।